ॐ

निर्वाण भूमि-श्री सम्मेदशिखर

लेखक :

धर्मदिवाकर सुमेरुचन्द्र दिवाकर, B.A.LL.,B. शास्त्री, न्यायतीर्थ

सिवनी. (मध्यप्रदेश)

●

(चारित्र-चक्रवर्ती, जैन-शासन, श्रमणबेलगोला, सैद्धान्तिक - चर्चा Nudity of Jain Saints, Religion & Peace, तात्त्विकचिंतन आदि के लेखक, महाबन्ध आदि के टीकाकार, जैन-गजट के भूतपूर्व सम्पादक तथा World Religion Congress १९५६, जापान में प्रतिनिधि)

●

वसन्तपंचमी

वी० नि० सं० २४८६

मंगल-स्मरण

अविनाशी, अविकार, परमरस–धाम हो।
समाधान, सर्वज्ञ, सहज, अभिराम हो॥
शुद्ध, बुद्ध, अविरुद्ध, अनादि, अनंत हो।
जगत्-शिरोमणि, सिद्ध सदा जयवंत हो॥

× × ×

णमो लोए सव्व - सिद्धायदणाणं

—गौतम गणधर

मैं लोक में सम्पूर्ण निर्वाण क्षेत्रों को प्रणाम करता हूँ।

× × ×

सम्मेदे गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं

—कुंदकुंद स्वामी

मैं सम्मेदगिरि के शिखर से मुक्त होने वाली आत्माओं की वन्दना करता हूँ।

× × ×

स सत्य - विद्या - तपसां प्रणायकः।
समग्रधी - रुग्र - कुलाम्बरांशुमान्॥
मया सदा पार्श्वजिनः प्रणम्यते।
विलीन - मिथ्यापथ - दृष्टि - विभ्रमः॥

—आचार्य समन्तभद्र

मैं उन भगवान् पारसनाथ को सदा प्रणाम करता हूँ, जो सत्य विज्ञान तथा तपश्चर्या के प्रणेता हैं, परिपूर्ण ज्ञानी हैं, उग्रवंश रूपी आकाश में चन्द्रमा समान शोभायमान हैं और जिन्होंने मिथ्या पथ द्वारा उत्पन्न दृष्टि भ्रम को दूर किया है।

भूमिका

विवेकी एवं विचारक व्यक्ति की दृष्टि आत्मशुद्धि की ओर केन्द्रित रहती है। आत्म-निर्मलता की उपलब्धि के लिए अन्तरंग तथा बहिरंग सामग्री की परिपूर्णता आवश्यक है। बाह्य साधनों में तीर्थवंदना को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसके अवलंबन से आत्मा की प्रवृत्ति अंतर्मुख बनती है एवं सम्यक्त्व की ज्योति विशेष निर्मल होती है। सागारधर्मामृत में लिखा है "स्थूललक्षः क्रियाः तीर्थयात्रादि दृग्विशुद्धये"—गृहस्थ का कर्त्तव्य है, कि वह अपने सम्यक्त्व भाव की विशुद्धता के लिए तीर्थयात्रा आदि कार्य करे। साधुओं के लिए भी तीर्थवंदना को महत्वपूर्ण कहा गया है। निर्वाण-मुद्रा को अंगीकार करने वाले निर्ग्रन्थों की निर्वाण भक्ति सदा सजग रहती है। समाधि मरण के लिए निर्वाण-भूमिका आश्रय मंगलप्रद माना गया है।

अनुपम तपस्वी, रत्नत्रयमूर्ति, चारित्र-चक्रवर्ती १०८ आचार्य शांतिसागर महाराज ने मेरे प्रश्न के उत्तर में कहा था, "निर्वाण स्थान पर आने से परिणामों में विशुद्धता उत्पन्न होती है। तपश्चर्या करने में उत्साह आता है तथा उपवास करने में शरीर को कष्ट नहीं होता।" निर्वाणभूमि कुंथलगिरि में आचार्य महाराज का पांचवा उपवास था। उसको लक्ष्य कर उनने कहा था "हमारा पांचवां उपवास है, किन्तु हमें ऐसा प्रतीत होता है, कि हमने एक ही उपवास किया हो"।

निर्वाण स्थानों में सम्मेदशिखर का नाम सर्वोपरि है। यहां इस अवसर्पिणी काल में वीस तीर्थंकरों का समवशरण आया। उनने योगनिरोध यहां करके सयोग केवली अवस्था से आगे की अयोगीजिन की परम उज्ज्वल आत्मस्थिति प्राप्त की। श्रेष्ठ शुक्लध्यानाग्नि में उनने अघातिया कर्मों का नाश किया। यहां ही आयुकर्म का क्षय कर वे तथा असंख्य मुनीन्द्र मृत्युंजय हुए; अमृतत्व के अधिपति बने। इस काल के पूर्व चौबीसों तीर्थंकरों ने यहां से निर्वाण प्राप्त किया है। भविष्य में भी यही शैलराज तीर्थंकरों का निर्वाण-स्थल रहेगा। निर्वाण

जाते समय उन परम विशुद्ध आत्माओं का परमौदारिक शरीर यहां ही रह गया था तथा उस पावन देह का अंत्येष्टि-संस्कार यहां हुआ था। इस कारण यह भूमि भोग के रोग से दुःखी व्यक्तियों को आध्यात्मिक नीरोगता प्राप्त कराने में विशिष्ट सहायता प्रदान करती है ।

विवेकी, पुरुषार्थी तथा रत्नत्रय का शरण लेने वाली आत्मा भाव-भक्ति पूर्वक निर्वाण भूमि की वंदना के प्रसाद से एक दिन लोक-शिखर पर अवस्थित परमार्थ निर्वाणभूमि में विराजमान हो जाती है तथा शाश्वतिक "निर्वाणं शुद्धसुखं"—विशुद्ध-आनंदमय निर्वाण की अधिपति बन जाती है।

निर्वाण स्थान के अवलंबन द्वारा उन 'निकल' परमात्मा माने गए सिद्धों का स्मरण किया जाता है, जिनको तीर्थंकर भगवान भी प्रणामकर संयम मूर्ति बनते हैं । इच्छामि भंते ! परिणिव्वाण-भत्ति, समाहिमरणं, जिण-गुण-संपत्ति होउ मज्झं"—भगवन्, मैं परिनिर्वाण भक्ति की इच्छा करता हूँ। मुझे समाधि सहित मृत्यु तथा जिनेन्द्र की गुण-संपत्ति प्राप्त हो।

इस रचना को, जो हमारी लिखी 'निर्वाणभूमि' पुस्तक का एक अंश है, प्रकाशित करने की अर्थ-व्यवस्था करनेवाले धर्मप्रेमी श्री मालीरामजी सरावगी, मंत्री बंगाल-विहार-उड़ीसा प्रांतीय तीर्थक्षेत्र कमेटी कलकत्ता धन्यवाद के पात्र हैं। शिखरजी की बीसपंथी कोठी के तत्वावधान में आयोजित पंचकल्याण महोत्सव के लिए अत्यन्त अल्प समय शेष रहने पर भी शुभचिंतक प्रेस ने शीघ्रता पूर्वक इस रचना को छापने का जो श्रम किया, उसके लिए हम अनुगृहीत हैं ।

यह सूचित करते हुए हमें प्रसन्नता होती है कि हमारे अनुज प्रोफेसर सुशीलकुमार दिवाकर एम. ए., बी. काम. एल-एल. बी. जबलपुर के विशेष परिश्रम के कारण ही यह पुस्तक प्रकाश में आ सकी।
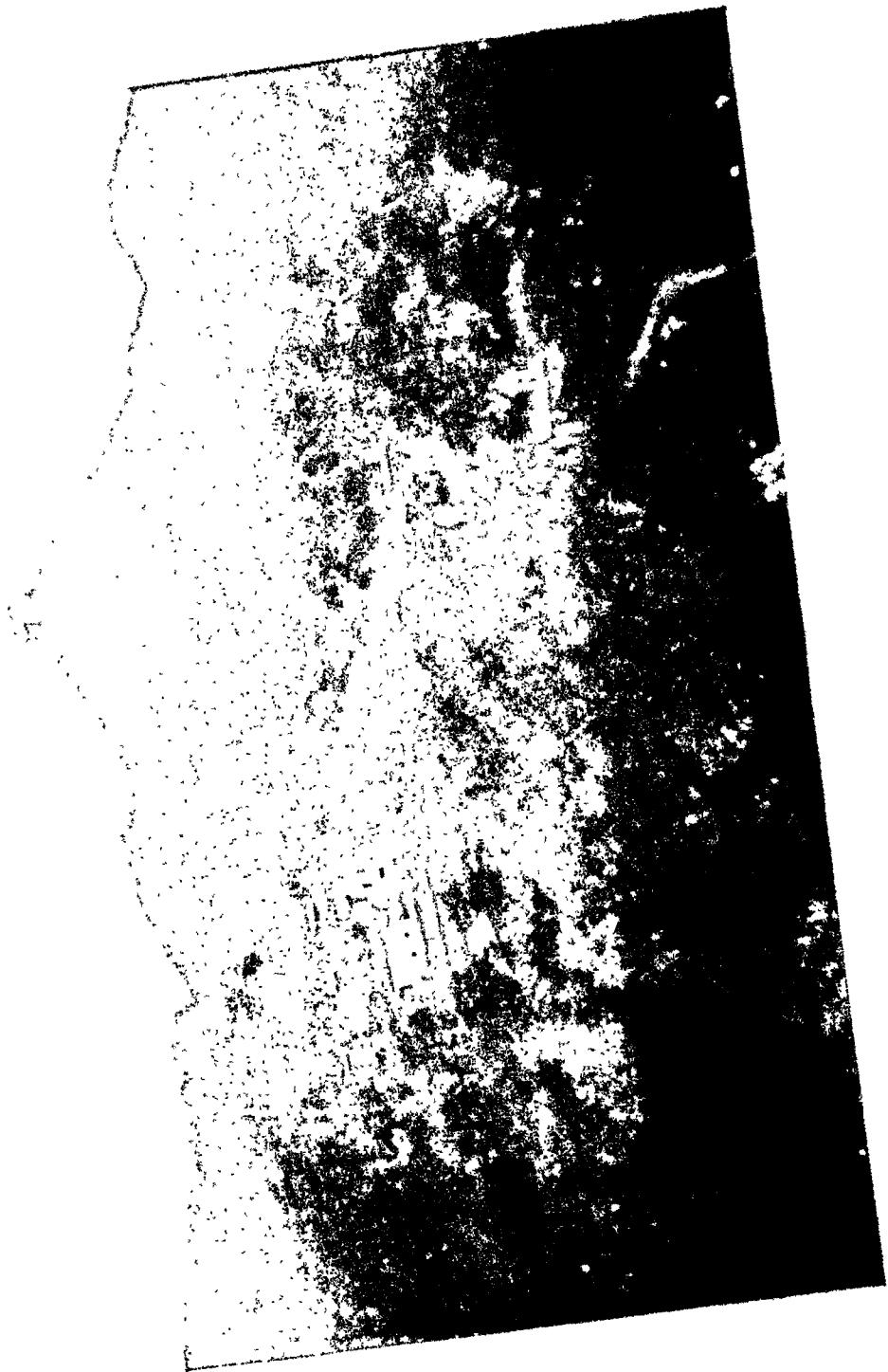
माघ शुक्ला चतुर्दशी
(ऋषभ - निर्वाण दिवस)
२५-१-१९६०
दिवाकर सदन
सिवनी. (म.प्र.)

सुमेरुचन्द्र दिवाकर

श्री सम्मेदशिखर

सिद्धक्षेत्र तीरथ परम, है उत्कृष्ट सुथान ।
शिखर समेद सदा नमूं, होय पाप की हानि ॥
अगनित मुनि जंह तें गए, लोक शिखर के तीर ।
तिनके पद-पंकज नमूं, नाशें भव की पीर ॥

[१]

जैन धर्म में तीर्थंकरों के जीवन से सम्बन्धित स्थल भव्यात्माओं के मन में विशुद्ध भावनाओं के प्रेरक माने गये हैं। इनमें निर्वाण-स्थलों की पूज्यता सर्वोपरि है। जैनागम में कहा गया है कि चौबीस तीर्थंकरों का जन्म सदा अयोध्या नगरी में हुआ है, और उनका निर्वाण सम्मेद शिखर से हुआ है। हुंडावसर्पिणी काल में अनेक अघटित घटनायें होती हैं। उनमें से एक यह भी है कि तीर्थंकरों के जन्म स्थान इस अवसर्पिणी में अयोध्या के बाहर भी पाये जाते हैं और उनकी निर्वाण भूमियाँ भी अन्यत्र कही गई हैं। ऋषभनाथ भगवान अष्टापद (कैलाश) से, वासुपूज्य स्वामी चम्पापुर से, महावीर भगवान पावापुरी से एवं नेमिनाथ तीर्थंकर गिरिनार पर्वत से मुक्त हुये हैं।[1] सम्मेद शिखर अतीत कालीन अनन्त तीर्थंकरों तथा अनागत काल सम्बन्धी गणनातीत तीर्थंकरों की निर्वाण स्थली है तथा

---

(१) निर्वाण काण्ड में लिखा है :—

अष्टापद आदीसुर स्वामि, वासुपूज्य चम्पापुर नामि ।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार, वंदों भावभगति उरधार ॥
चरम तीर्थङ्कर चरम शरीर, पावापुर स्वामी महावीर ।
शिखरसमेद जिनेसुर वीस, भावसहित वंदों निसदीस ॥

मंगलाष्टक में कहा है :—

कैलासे वृषभस्य निर्वृतिमही वीरस्य पावापुरे ।
चंपायां वसुपूज्य सज्जिनपतेः सम्मेदशैलेऽर्हताम् ॥
शेषाणामपि चोर्जयन्त शिखरे नेमीश्वरस्यर्हितो ।
निर्वाणावनयः प्रसिद्ध विभवाः कुर्वन्तु ते-मंगलम् ॥

होगी। वर्तमान काल में अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभु, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभु, पुष्पदन्त, शीतल, श्रेयांश, विमल, अनन्त, धर्म, शान्ति, कुन्थ, अर, मल्लि, सुव्रत, नमि और पार्श्वनाथ ये बीस भगवान इस क्षेत्र से मुक्ति गए हैं। यह तीर्थ अनादि निधन सिद्ध भूमि है। दिगम्बर जैन समाज में इसे तीर्थराज के नाम से भी कहते हैं।

पर्वत वर्णन

सम्मेद-शैल समुद्र की सतह से ४४७८ फीट ऊंचाई पर है। वह लम्बा फैला हुआ है। उसका क्षेत्रफल २५ वर्गमील है। पर्वत की चढ़ाई का मार्ग ६ मील है और ६ मील के लगभग टोंकों की वन्दना का क्षेत्र है। इस प्रकार पर्वत की वन्दना करने में १८ मील चलना पड़ता है। यह पर्वत हजारीबाग जिले के पूर्वी किनारे पर ग्रेन्ड ट्रंक रोड और ग्रेन्ड कार्ड लाईन के दक्षिण की ओर है। पश्चिम और उत्तर की ओर यह पर्वत अधिक फैला हुआ है।

गिरडीह नामक स्थान से शिखरजी पहाड़ की तलहटी का स्थान मधुवन लगभग १६ मील दूरी पर पक्की सड़क पर है। लगभग ८ मील दूरी पर बराकर नदी बहती है, यहाँ पालगंज लघुराज्य के अधिपति का निवास स्थल था। ईसरी नामक रेल्वे स्टेशन से मधुवन १४ मील पर है। आजकल ईसरी रेल्वे स्टेशन का नाम रेल्वे ने पारसनाथ कर दिया है।

मधुवन में सबसे ऊपर की कोठी बीसपन्थी उपरैली कोठी कही जाती है। निचली कोठी तेरह पन्थियों की है। मध्यवर्त्ती कोठी श्वेतांबरों की है। प्रत्येक कोठी में विशाल धर्मशालायें हैं। पर्वत की चढ़ाई उपरैली कोठी से प्रारम्भ होती है। कुछ दूर जाने पर सड़क खतम हो जाती है और टेढ़ा पग-डन्डी का रास्ता मिलता है। आधी दूर चढ़ने पर जहाँ चढ़ाई कम ढालू रह जाती है, वहाँ चाय के बगीचे में से होकर सड़क जाती है। यहाँ एक सुन्दर जल से पूर्ण निर्झर कलकल नाद करता हुआ गंधर्वनाला जीवन को क्षणिक कहता हुआ यात्री को धर्म के कार्य में प्रवृत्ति होने की प्रेरणा सा करता हुआ प्रतीत होता है। वहाँ एक बीस पंथी कोठी की धर्मशाला है।

यात्री कुछ क्षण उस निर्झर के पास रुक कर पुनः पर्वत के ओर बढ़ता है। एक मील ऊपर जाने पर सीता नाला प्राप्त होता है। वहाँ पर एक धर्मशाला के खंडहर पाये जाते हैं। गंधर्वनाला और सीता नाला के बीच में सड़क दो भागों में विभक्त हो जाती है। एक डाक बंगले को होती हुई पार्श्वनाथ मंदिर (टोंक) को चली जाती है और दूसरी कुन्थुनाथ तीर्थंकर की टोंक को जाती है। यात्री लोग कुन्थुनाथ स्वामी की टोंक के रास्ते से चढ़ते हैं।

मधुवन से डाक बङ्गला ५¾ मील दूरी पर है। वहाँ से पार्श्वनाथ भगवान की टोंक समीप पड़ती है। कुन्थुनाथ भगवान की टोंक वहाँ से २½ मील के लगभग है।

पर्वत की यात्रा

पर्वत पर जाने के लिये यात्री लोग रात्री में लगभग तीन बजे रवाना हो जाते हैं और सूर्योदय की वेला में भगवान कुन्थुनाथ स्वामी की टोंक पर पहुँच जाते हैं। कुन्थुनाथ स्वामी की टोंक के पास गौतम स्वामी की टोंक बनी हुई है। टोंकें पर्वत की चोटियों तथा पर्वत की समीपवर्त्ती भूमि पर बनी हुई हैं। यात्री पर्वत के दूसरे सिरे पर विद्यमान चन्द्रप्रभु भगवान की ओर जाता है। इस तरफ की चढ़ाई यात्री को कुछ कठिन सी लगती है; किन्तु जिन भगवान का पुण्यनाम श्रान्त शरीर में स्थित आत्मा को प्रेरणा और बल प्रदान करते जाता है।

चन्द्रप्रभु स्वामी की टोंक से लौटते हुये मध्य में जल मन्दिर नाम का स्थान मिलता है। वहाँ से पार्श्वनाथ भगवान की टोंक पर पहुँचने में सुविधा रहती है। सन १९१२ के सर्वे सेटिलमेन्ट के पूर्व इस जलमन्दिर में दिगम्बर प्रतिमायें थीं, किन्तु किन्हीं बन्धुओं ने शिखरजी के मुकदमें के समय रातों रात सब मूर्त्तियों को गायब कर दिया। जिससे अब जल मंदिर में दिगम्बरों का अधिपत्य नहीं है। हम उक्त मुकद्मे की चर्चा विस्तार में करके पुरानी बातों को पुनः हरा नहीं करना चाहते। इस जल मन्दिर में श्रान्त यात्री कुछ ठहरकर पुनः पार्श्वनाथ टोंक की तरफ चलता है।

पहाड़ की लम्बी चढ़ाई का श्रम, कंकर पत्थरों का नंगे पावों में चुभना यात्रियों को कम कष्टप्रद नहीं होता, किन्तु जिन तीर्थंकर परमदेव का पवित्र नाम, स्मरण भव भव की विपदाओं को दूर भगाता है, वही पुण्य नाम अत्यन्त क्षीण-बल और मील आधा मील भी चलने में शक्ति रहित नर-नारी को सारे पर्वत की यात्रा अधिक कष्ट वेदना या आकुलता के बिना ही उत्साह पूर्वक धीरे-धीरे करा देता है। अत्यन्त वृद्ध स्त्री पुरुष, बालक तक सारी १८ मील की बन्दना प्रसन्नता पूर्वक करके आ जाते हैं। यह स्पष्टतः जिनेन्द्र भक्ति के प्रभाव को बताता है। पार्श्वनाथ प्रभु की टोंक यात्री के अन्तःकरण में विलक्षण शान्ति और आनन्द उत्पन्न करती है। वेग से बहता हुआ शीतल और सुखद पवन दूर दूर से आने वाले यात्री का उस शैल सम्बन्धी प्रकृति का प्रतिनिधि बनकर ही स्वागत करता हुआ नव स्फूर्ति देता है और श्रान्त पथिक को जब जीवन सा प्रदान करता है।

पारसनाथ टोंक का आकर्षण

वैसे तो बीस तीर्थंकर सम्बन्धी सभी टोंकें मुमुक्षु, भव्य प्राणी के अन्तःकरण में विशुद्धि निर्मलता और शान्ति उत्पन्न करती हैं, किन्तु पार्श्वनाथ स्वामी की टोंक का प्रभाव और आनन्द अवर्णनीय है। सम्मेद शिखर से निर्वाण प्राप्त करने वाले तीर्थंकरों में पार्श्वनाथ प्रभु अंतिम हैं। अतः उन्हीं की स्मृति प्रधानता से विद्यमान है। भगवान पार्श्वनाथ की मुक्ति संबंधी उत्सव आदि का निराबाध स्मरण अभी तक होता आ रहा है। पार्श्वनाथ की टोंक का दूर से दर्शन भक्त के रोम रोम में आनन्द बरसाता है। उस पुण्यस्थल को अत्यन्त समीपता आत्मा को शान्ति और आनन्द के सिन्धु में आकण्ठमग्न कर देती है। पहुँचने पर मन प्रभु के चरणों को छोड़कर लौटना नहीं चाहता। अपनी आकुलताओं आदि के कारण भला वहाँ किसका पुण्य है, जो सदा रहा आवे किन्तु मन उस स्थल को छोड़ना नहीं चाहता। वहाँ का बाह्य सौन्दर्य भी अपनी अद्भुत छटा दिखाता है। वहाँ विचारक व्यक्ति के ज्ञान चक्षुओं के आगे मंगलमय भगवान् पार्श्वनाथ का तपोमय जीवन-चरित्र आ उपस्थित होता है और हृदय सोचता है कि गजराज के जीव ने रत्नत्रय का आश्रय ले इस स्थल पर पार्श्वनाथ तीर्थंकर के रूप में आकर सम्पूर्ण कर्मों का क्षय किया और अविनाशी जीवन और

आनन्द के अनुपम निकेतन सिद्ध लोक को पाया। वहाँ से दूर दूर तक प्रकृति की शोभा बड़ी प्यारी लगती है। इस टोंक के कारण वह पर्वत पार्श्वनाथ पर्वत के नाम से प्रसिद्धि पा रहा है।

पर्वत से उतरते समय तीन-चार फर्लांग पर जो सरकारी डाक बंगला मिलता है वहां से बाईं ओर एक रास्ता निमियाघाट नाम के रेल्वे स्टेशन को जाता है, इसलिये यात्री को मधुवन आने के लिये उस पथ को छोड़ सीधे हाथ के रास्ते से उतरना चाहिये।

सम्पूर्ण पर्वत पर बीस तीर्थंकरों के चरण चिन्हों के सिवाय विशेष भक्तिवश चार तीर्थंकरों और गौतम स्वामी के भी चरण स्थापित हैं, यद्यपि इस पर्वत से उनका निर्वाण नहीं हुआ है।

मधुवन के समान पर्वत पर जाने के लिये निमियाघाट से भी रास्ता है, जो निमियाघाट स्टेशन से सीधा पार्श्वनाथ स्वामी की टोंक को पहुँचाता है। वहां से चढ़ाई का कष्ट कम पड़ता है। जल पवन की दृष्टि से भी निमियाघाट का स्थान यात्रियों के लिये बहुत सुखद है। वहां आरा वाले एक धार्मिक श्रावक की ओर से छोटी सी धर्मशाला बनी है। समीप में केसरेहिन्द स्वर्गीय बाबू सखीचन्द जी जैन का बंगला है। यह स्थान अत्यन्त शांत और निरोग्यताप्रद है।

पर्वत पर गौतम स्वामी की टोंक के सिवाय शेष टोंकों और सब मन्दिरों में शिलालेख हैं, जिनमें बहुतों में प्रतिष्ठा कराने वाले का नाम संघ तथा प्रतिष्ठाचार्य का नाम व गच्छ लिखा है। ये चरण अठारहवीं सदी के हैं। जल मन्दिर के लेख पर सुगनचन्द का नाम है। वह वि. स. १८२२ अर्थात् १८६५ ईस्वी का है।

एक शंका

यहाँ शंका होती है कि जब ये अत्यन्त प्राचीन तीर्थ है, तब १८ वीं सदी के पूर्व का लेख वहाँ क्यों नहीं है? इस प्रश्न का सहज ही उत्तर यह दिया जा सकता है कि पर्वत पर असुरक्षित-सदृश चरणों पर प्रकृति आदि का कोप कम नहीं रहा जिससे पुरानी सामग्री जीर्ण होती चली गई और धर्म भक्तों ने उनका जीर्णोद्धार करने की परम्परा चालू रखी। हमारी तो यह भी धारणा है कि प्राचीनता की द्योतक

मूल सामग्री दिगम्बर परम्परा से सम्बन्धित रही आई, जिसको इतर लोगों ने सत्य के स्थान पर सम्प्रदाय के मोह वश पृथक किया।

पर्वत की प्राचीनता को बताने वाली सामग्री दिगम्बर जैन ग्रन्थों में विद्यमान है।

प्रिवी कौंसिल का मत

शिखर जी केस की प्रिवी-कौन्सिल की अपील नम्बर १२१, सन् १९३३, के फैसले में लार्ड थेंकरटन, सर जान वेलिस, सर लेन्सलाट ने कुछ महत्व पूर्ण बातें दी हैं। "पार्श्वनाथ पर्वत पर जो जिन मन्दिर हैं, वे निःसंदेह बहुत प्राचीन हैं, किन्तु उनके इतिहास का अथवा उस समय का जबकि पूर्ण पर्वत की पवित्रता सम्बन्धी विचार सर्व प्रथम माने गये, बहुत कम ज्ञान है।" उनने यह भी लिखा है "लेफ्टिनेंट बीडुल वहाँ सन् १८४६ ई० में गये थे। उनकी रिपोर्ट के अनुसार पर्वत झाड़ों तथा घने जंगल से ढंका हुआ था और जंगली जानवरों से भरा हुआ था। उस पर मनुष्य नहीं रहते थे। वहाँ कुछ संथालों अर्थात जंगली लोगों की झोपड़ियाँ थीं, जो पर्वत के नीचे के भाग पर थीं।" श्री बीडल ने यह भी लिखा कि "पर्वत पर प्रति वर्ष जनवरी मास में एक पक्ष पर्यंत एक धार्मिक मेला भरा करता था। दुकानदार पूजकों की आवश्यकता पूर्ति निमित्त अनाज तथा दूसरी चीज लेकर पर्वत पर चढ़ते थे "इसका यह भाव निकालना उचित न होगा कि पहिले शिखरजी पर जैन यात्रियों का गमनागमन बन्द हो गया था।" सन् १७१८ (संवत् १६६१) में महाकवि बनारसीदास जी शिखरजी गये थे। उनने अपने अर्ध कथानक नाम के आत्मचरित्र में इस पर प्रकाश डाला है। सम्मेद शिखर के पहाड़ पर असमर्थ व्यक्ति डोली पर बैठकर जाते हैं। कोई कोई अत्यधिक भक्ति वाले व्यक्ति पर्वत पर न जाकर तलहटी के पास बने हुये मैदान के चबूतरे पर बैठकर समस्त पर्वत की पूजा करते थे। अब ऐसे व्यक्ति नहीं मिलते। उन लोगों की श्रद्धा इस प्रकार थी, कि पर्वत पर से अगणित ऋषियों ने निर्वाण प्राप्त किया है, इसलिये पर्वत का कण २ उन पूज्य आत्माओं की निर्वाण भूमि होने से वन्दनीय है इसलिये उस पर पैर रख कर किस प्रकार पर्वत पर चढ़ा जाय? इन विचारों में गहरी भक्ति की झांकी मात्र दिखाई देती

है, अन्यथा अतीत अनन्त काल को ध्यान में रखते हुये आगम के प्रकाश में पैंतालीस लाख योजन प्रमाण इस मनुष्य क्षेत्र में ऐसा कौनसा स्थल गमनागमन के योग्य भक्तजनों के लिये बताया जा सकता है, जहाँ से अगणित भव्यात्माओं ने मुक्ति मन्दिर में प्रवेश न किया हो ? इसलिये भक्ति के साथ मर्यादा पूर्वक कार्य उचित है।

ऊपरैली कोठी के पास चढ़ाई के स्थान में, सीता नाले के पास ढाल पर तथा पहाड़ की चोटी पर क्षत्रपाल का स्थान बना है।

न्यायमूर्ति मुकर्जी का मत

पर्वत के विषय में श्री टी. डो. मुकर्जी, स्थानापन्न एडीशनल सबजज, हजारीबाग ने ताः ३१-१०-१९१९ को मुकदमा नं० २८८ का विद्वतापूर्ण फैसला लिखा था उससे इस शैलराज के विषय में बहुत सी उपयोगी बातें विदित होती हैं। "आजकल पर्वत पर टोंकों में विद्यमान चरणों पर श्वेताम्बरों ने अपनी ओर से चरणों को बदलकर अपने मनो नीत लेख बनाये हैं।" भगवान पार्श्वनाथ की वेदी पर सन् १७६० ई० का लेख है। इसके विषय में न्यायमूर्ति मुकर्जी महोदय ने लिखा था "यह सच है कि पार्श्वनाथ जी की वर्तमान वेदी का लेख विल्कुल झूठा है, कारण उसमें १७६० ई० अंकित है, जब कि वह १८६७ ई० या उसके लगभग लिखा गया होगा। साफ बात यह है, कि सन् १८६७ में संम्पूर्ण मन्दिर बिजली के गिरने के कारण नष्ट हो गया था।" (पे० १७)

पर्वत के सम्बन्ध में अनेक अप्रिय प्रसंग आने से जैन समाज को विपुल धन व्यय करना पड़ा था। एक बार श्री बोडस ने सन् १८८७ में पर्वत पर ठेके से ली हुई जमीन में सुअरों का कारखाना खोल दिया था। इस सम्बन्ध में १८८८ में एक पिगरीकेस (Piggery Case) चलाया गया था, उसमें हाईकोर्ट ने मि० बोडस पर खर्चे समेत हमेशा के लिये मनाई के हुकुम की डिगरी करदी थी।

सेनीटोरियम योजना

सन १९०७ में यह विचार चला था कि पहाड़ पर सेनीटोरियम बनाया जाय। यह योजना हजारीबाग जिले के डिप्टीकमिश्नर श्री कैरी (Carey) ने की थी। उस समय दिगम्बरों और श्वेताम्बरों ने मिलकर

श्री केरी की योजना के विरुद्ध सरकार के पास मेमोरियल भेजे थे। इससे लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर फ्रेजर अगस्त सन १६०७ में पर्वत पर आये थे। इस अवसर पर दोनों सम्प्रदाय के प्रमुखलोग एकत्रित हुये थे। मधुवन में एकत्रित जैनियों ने उक्त सर फ्रेजर साहब के स्वागत के समय, अर्पित अभिनन्दन पत्रों में अपनी २ बातें पेश की। उसमें गवर्नमेंट का यह स्पष्ट उत्तर था, कि पर्वत जैनियों का नहीं है, किन्तु वह राजा पालगंज का है। यद्यपि जैनियों का चिरकाल से उस पर्वत पर पूजन इत्यादि का अधिकार है परन्तु वह अधिकार सम्पूर्ण पर्वत पर नहीं है। यदि जमीदार राजा पालगंज को बंगला बनाने के लिये ठेका देने के अधिकार से रोका जाय, तो उस स्थिति में जैनियों के लिये यह आवश्यक होगा कि वे उसके लिये जमीदार को काफी मुआवजा देवें। इस पर जैनी लोग राजा का हक खरीदने के लिये तैयार हो गये थे।

राजा पालगंज

कहते हैं पहिले यात्री लोग राजा पालगंज से अपनी यात्रा की सफलता के विषय में शुभ कामना प्राप्त किया करते थे। उक्त राजा ने यात्रा को सफल कह दिया, तो लोग अपने को कृतार्थ अनुभव करते थे। वह राजा मन्दिरों की रक्षा करता था; साथ ही यात्रियों के आराम का भी ध्यान रखता था। राजा के सिपाही यात्रियों को पर्वत पर ले जाते थे और वहाँ शिखर पर परिक्रमा कराते थे। न्यायमूर्ति श्री मुकर्जी ने लिखा है "जान पड़ता है कि राजा मन्दिरों की केवल रक्षा किया करता था। पर्वत के खर्च वगैरह से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था। यद्यपि राजा जैनी नहीं था किन्तु वह जैन यात्रियों तथा जैन धर्म से पूर्ण सहानुभूति रखता था, मानों वह जैनियों का पन्डा हो"—(पृष्ठ १८)

इसके पश्चात् प्राप्त सामग्री से यह विदित हुआ कि पालगंज राजा के परिवार में दिगम्बर जैन धर्म की आराधना होती थी। राजा पालगंज ने आर्थिक आवश्यकतावश इस पहाड़ को दिगम्बर समाज को वेचने का विचार प्रगट किया था और दिगम्बर समाज के साथ सौदा भी पक्का हो गया था। दिगम्बर समाज ने ५०,०००) रुपया बंगाल सरकार के पास जमा किये थे किन्तु इसी बीच में श्वेताम्बरों ने किसी तरह १६१८ में इस पहाड़ को खरीद लिया। इस सम्बन्ध में काफी मुकदमा चले। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ

क्षेत्र कमेटी के तत्वावधान में इस तीर्थराज पर दिगम्बरियों के धार्मिक न्यायपूर्ण अधिकारों की रक्षा के लिए तन, मन, धन से उद्योग किया गया था, अन्यथा यह श्रेष्ठ तीर्थ पूर्ण रीति से दिगबरों के हाथ से चला गया होता। श्वेताम्बरों के साथ सीढ़ी केस, पूजा केस, इंजंक्शन केस, पट्टाकेस, नया नगर केस आदि अनेक मामले चले। इन मुकदमों में विलायत तक लड़ना पड़ा। लाखों रुपयों का व्यय हुआ। दिगम्बर समाज ने कभी भी झगड़ा मोल नहीं लिया। अपने न्यायोचित धार्मिक अधिकारों के रक्षण हेतु उसे न्यायालय में जाने को बाध्य होना पड़ा था। इस सब पैरवी का यह परिणाम निकला, कि दिगम्बर समाज को अपनी आम्नाय के अनुसार दर्शन तथा पूजन का समान रूपसे अधिकार मिला। इस विषय में किसी प्रकार का हस्तक्षेप श्वेताम्बर समाज नहीं कर सकती।

[२]

चौबीस तीर्थंकर :—

शिखरजी से २० तीर्थंकर मोक्ष गये हैं, किन्तु उसकी प्रसिद्धि पारसनाथ पर्वत के रूप में ही समस्त भारत में है। आजकल साहित्य और विज्ञान आदि का विपुल प्रसार होते हुये भी जैनधर्म के विषय में अनेक भ्रांत धारणायें प्रचलित हैं। मध्यभारत के भूतपूर्व राज्य-प्रमुख महाराज ग्वालियर ने दिगम्बर जैन महासभा के स्वर्ण जयन्ती महोत्सव पर अपने भाषण में कहा था " जैन धर्म के इतिहास, महाप्रभु महावीर और महर्षि पार्श्वनाथ के सम्बन्ध में भी अनेक विदेशी पुरातत्व वेत्ताओं तथा इतिहासकारों ने भ्रान्तियाँ प्रचलित की हैं। कुछ विदेशी पुरातत्व वेत्ताओं का मत है, कि जैनधर्म के स्थापक ऋषि ऋषभ न होकर महाप्रभु महावीर थे और कुछ इतिहासकार उन दोनों महामानवों से अलग जैनधर्म के प्रवर्तक जिनमुनि पार्श्वनाथ को मानते हैं। इतना ही नहीं उन लोगों का यह भी कहना है कि जैनधर्म केवल १२५० वर्ष पुराना है। इसे वे या तो बौद्धधर्म की एक शाखा मानते हैं या फिर उसे हिन्दुधर्म की उपज कहते हैं" (१३ मई १९५१)। ऐसे विचारों के समक्ष यह पर्वत मौन वाणीद्वारा यह बोलता हुआ सा प्रतीत होता है कि, यदि साम्प्रदायिकता, संकीर्णता और पक्षपात का चश्मा दूरकर देखो, तो जैनधर्म के ज्योतिंधर तीर्थंकर ऋषभ देव, अजितनाथ सम्भवनाथ आदि जिनेन्द्रों का अस्तित्व स्वीकार करना होगा।

इतिहासकार स्मिथ ने लिखा है—१ "इन खोजों से लिखित जैन परम्परा का अत्यधिक समर्थन हुआ। वे इस वात के स्पष्ट और अकाट्य प्रमाण हैं, कि जैन-धर्म प्राचीन है और वह प्रारम्भ में भी वर्त्तमान स्वरुप में था। ईस्वी सन् के प्रारम्भ में भी २४ तीर्थंकर अपने अपने चिन्ह सहित निश्चय पूर्वक माने जाते थे।" डा० जेकोबी का कथन है कि "भगवान् पार्श्वनाथ को जैन-धर्म के संस्थापक प्रामाणिक करने वाले साधनों का अभाव है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभ देव को जैन धर्म का संस्थापक प्रमाणित करने में जैन परम्परा एक मत है। इस परम्परा में, जो उनको प्रथम तीर्थंकर बताती है कुछ ऐतिहासिक तथ्य सम्भवनीय हैं।"२ वैदिक विद्वान् डॉ० राधाकृष्णन का कथन है कि "इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वर्धमान अथवा पार्श्वनाथ के पूर्व में जैनधर्म विद्यमान था। यजुर्वेद में ऋषभदेव अजितनाथ तथा अरिष्टनेमी इन तीन तीर्थंकरों का उल्लेख पाया जाता है। भागवत पुराण से ऋषभदेव जैनधर्म के संस्थापक थे इस विचार का समर्थन होता है"—३

---

(1) "The discoveries have to a very large extent supplied corroboration to the written tradition and they offer tangible and incontrovertible proof of the antiquity of the Jain religion and its early existence very much in its present form. The series of twenty-four pontiffs (Tirthankaras) each in his distinctive emblem was evidently firmly believed in at the beginning of the Christian era."

(2) " There is nothing to prove that Parsva was the founder of Jainism. Jain tradition is unanimous in making Rishabha, the first Tirthankara (as its founder). There may be something historical in the tradition which makes him the first Tirthankara "

(3) There is no doubt that Jainism prevailed even before Vardhaman or Parshvanatha. The Yajurveda mentions the names of three Tirthankaras Rishabha, Ajitnath and Aristanemi. The Bhagwatpuran endorses the view tht Rishabhadeo was the founder of Jainism ".

Indian Phil. Vol. I. P. 287

इस विषय में हमने जैनशासन ग्रंथ के 'इतिहास के प्रकाश में" शीर्षक निवन्ध में विशेष प्रकाश डाला है।

जैन धर्म में जिन २४ तीर्थंकरों का वर्णन पाया जाता है, वह मान्यता सत्य के आधार पर प्रतिष्ठित है। कारण जैनेतर स्रोतों में भी चतुर्विंशति महापुरुषों का सद्भाव स्वीकार किया गया है। हिन्दू पुराण साहित्य चौबीस अवतारों को मान्य करता है। बौद्ध धर्म में चौबीस बुद्ध माने गए हैं। पारसी धर्म (Zorastrians) में भी चौबीस 'अहूर' नाम से पूज्य पुरुष माने गए हैं। यहूदियों में भी चौबीस महान आत्माओं का आलंकारिक भाषा में अस्तित्व अंगीकार किया गया है। सम्मेदशिखर विवेकी मानव को यह कहता सा प्रतीत होता है। अरे भ्रान्त भाई! मुझ पर ही सदा से तीर्थंकरों ने अपने पुण्य चरण रखे थे और अपनी भौतिक देह को यहां ही छोड़कर सिद्धालय को प्रस्थान किया था।"

पर्वत पर वंदना द्वारा भव्यात्मा को अवर्णनीय शांति, आनंद एवं विशुद्धता की प्राप्ति होती है। मधुवन की तेरह पंथी और बीस पंथी कोठियों के जिन भवनों के दर्शन द्वारा भी महान शान्ति उपलब्ध होती है। तेरह पंथी कोठी के जिन भवनों की सुन्दरता, भव्यता, वीतरागता मन को बहुत शांति प्रदान करती हैं। सहस्रकूट चैत्यालय, चौबीसी भगवान् की प्रतिमाएं भगवान् पार्श्वनाथ की भव्य प्रतिमा आदि वंदक के मन में अमिट स्थान बनाती है। बीस पंथी कोठी की भी प्रतिमाओं का दर्शन नेत्रों को आनंदप्रद रहता है। शिखरजी की टोंकों की रचना मानस्तंभ, बाहुबलि की प्रतिमा आदि का समुदाय भी बड़ा प्रिय लगता है।

तलहटी में यात्री को सभी आवश्यक सामग्री प्राप्त हो जाती है, कारण वहां एक छोटा सा बजार भी लगा करता है।

पार्श्वनाथ भगवान

जिन भगवान पार्श्वनाथ के पुन्य नाम से यह पारसनाथ पर्वत प्रसिद्ध है उनके जीवन का संक्षिप्त वर्णन आवश्यक प्रतीत होता है।

भगवान पार्श्वनाथ ने अपने जन्म द्वारा काशी नगरी को अलंकृत किया था इनके पिता राजा विश्वसेन थे और माता वामादेवी थीं। इन्होंने प्रानत स्वर्ग से चय किया था। इनके गर्भ और जन्म का महोत्सव देवेन्द्रों ने अवर्णनीय उल्लास पूर्वक मनाया था।

इनकी मनोवृत्ति प्रारम्भ से ही ज्ञान और वैराग्य की ओर थी। वे राज्य वैभव को तृण तुल्य समझते थे। इसलिये वैभव और भोगों की ओर इनके अन्तःकरण में तनिक भी आकर्षण और ममत्व न था। जब ये आठ वर्ष के हुये तब से ही इनने संयम की ओर अपनी मनोवृत्ति लगाई। तारुण्य अलंकृत देह को देख पिता ने इनके विवाह का विचार किया, किन्तु इनने ब्रह्मचारी रहने की दृढ़ इच्छा प्रगट की। इनके दृढ़ भावों को देख माता पिता की विवाह सम्बन्धी योजना अकार्यकारी हुई। इनका जीवन अत्यन्त प्रशान्त था। शान्ति, प्रेम, करुणा और विवेक के ये वारिधि थे।

एक दिन मनोज्ञ मतंग पर आरूढ़ हो वे गंगा का सौन्दर्य देखते हुये जा रहे थे। मार्ग में इनने एक तपस्वी को देखा, जो पंचाग्नि तप कर अपने को कृतार्थ समझता था। उस साधु को इस बात का होश न था कि उसकी तपस्या कितने जीवों का घात कर रही थी। वह जिस लकड़ी को जला रहा था उसके बीच में एक नाग युगल का निवास था। दिव्य ज्ञान द्वारा उन्हें दग्ध होते हुये देख इन दयानिधि का हृदय पिघल गया। वे उसके पास गये और उसे समझाया कि वह जीवघात युक्त तप में प्रवृत्त हो अपना अहित न करे। अग्नि के समान गरम हो उसने यह जिद की कि उसकी तपस्या पूर्णतः निर्दोष है, तब भगवान ने लकड़ी को चीर कर जलते हुये सर्प युगल को बताया। उस नाग युगल को छटपटाते हुये मृत्यु की गोद में जाता हुआ देख उनने शान्तिमय शब्द कहे। अन्तिम क्षण में जिनेन्द्र के मुख से जिनेन्द्र की वाणी सुनने का भला किस जीव को सौभाग्य मिल सकता है?

वृन्दावन कवि ने लिखा है—

नाग युगल के भाग की, महिमा कही न जाय।
जिन दर्शन प्रापति भई, मरन समय सुखदाय॥

उस नाग युगल ने सुर पदवी पाई। वे धरणेन्द्र पद्मावती के रूप से विख्यात हुये। वह कृतज्ञ सुर दम्पति प्रेम से प्रभु का स्मरण करने वालों का संकट निवारण करने तथा सहायता पहुँचाने में सर्वदा तत्पर रहा करता है।

कहा भी है—

वामा सुत की सेवा करिये। काहे मन में शंका धरिये॥
पद्मा जाकी दासी कहिये। जो जो सुख मांगो सो लहिये॥

उस दिन की घटना प्रभु के जीवन के लिये आत्म साधना की ओर प्रेरणा देने वाली बन गई। मिथ्या श्रद्धा, मिथ्या ज्ञान, और मिथ्या आचरण के द्वारा यह आत्मा अब तक दुख उठाते आ रहा है। उसके कल्याण का उपाय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की समुपलब्धि है। गम्भीर तत्व चिन्तन ने उनके मन में संयम पथ की ओर प्रस्थान करने में प्रबल पिपासा पैदा कर दी। अपने इष्ट वर्ग को सान्त्वना के शब्द कहकर उनने पौष कृष्णा एकादशी को राज्य वैभव का परित्याग कर सुरेन्द्र निर्मित पालकी में विराजमान हो तपोवन की ओर गमन किया।

वर्णन भी है—

कलि पौष एकादशी आई। तब बारह भावन भाई॥
अपने कर लौंच सु कीना। हम पूजे चरण जजीना॥

सकल संयम की साधना के प्रसाद से भगवान् ने कैवल्य (सर्वज्ञता) की आत्म विभूति प्राप्त की और धर्म की ज्ञान गंगा को प्रवाहित कर मोहाग्नि संतप्त प्राणी मात्र को शान्ति प्रदान की। श्रावण शुक्ला सप्तमी को उन्होंने सम्मेदाचल से निर्वाण पद प्राप्त किया। तब से आज तक यह पुण्य स्थल अनन्त आत्माओं को मुक्ति पथ की ओर प्रेरित करता है।

यह बात ज्ञातव्य है कि २० तीर्थंकरों ने जिस स्थान से मोक्ष प्राप्त किया, उस जगह इन्द्र ने निर्वाणपूजार्थ चिन्ह बनाया था। उस जगह टोंके बनी थीं। स्वामी समंतभद्र ने स्वयंभू स्तोत्र में नेमीनाथ भगवान् की स्तुति में बताया है कि इन्द्र ने ऊर्जयंत गिरि पर जहाँ से नेमीनाथ प्रभु ने मोक्ष प्राप्त किया था वहां चिन्ह बनाया। इससे वह कल्पना मिथ्या प्रमाणित हो जाती है, जिसमें यह कहा जाता है कि तीर्थंकरों के निर्वाण का स्थान निश्चित नहीं है।

मधुवन में एक बहुत बड़ा संस्कृत भापा का विस्तृत शिलालेख है उसमें लिखा है कि सम्राट पंचम जार्ज के शासन काल में दक्षिण प्रान्त के महान् तपस्वी चारित्र चक्रवर्त्ति दिगम्बर जैनाचार्य श्री शान्तिसागर महाराज संघ सहित सन् १९२९ में पधारे थे और उस समय लाखों जैनों का समुदाय वहां पहुँचा था। रत्नत्रयधर्म की अवर्णनीय प्रभावना हुई थी।

चरण चिन्ह

जैन लोग तीर्थंकरों के चरण चिन्ह पूजते हैं अर्थात् चरणों के निशान की पूजा करते हैं। इसके स्थान में किसी ने यह भ्रम उत्पन्न किया था कि उनके चिह्नों की पूजा की जाती है भगवान् की नहीं। अर्थात् पहिली टोंक भगवान् कुन्थुनाथ स्वामी की पड़ती है, उनका चिह्न "बकरा है" इसलिये जैनों में बकरे की पूजा होती होगी। शान्तिनाथ भगवान् का चिन्ह हरिण है इसलिये उनकी टोंक पर हरिण की पूजा होती होगी। यह विचार भ्रम मूलक है। वे चिन्ह तीर्थंकरों के हैं और यहाँ चरण के चिन्ह (foot print) अर्थात् चरणों के नीचे के भूतल की वंदना से अभिप्राय है।[1] उस भूतल को प्रणाम करने में उस मिट्टी का गुणगान नहीं होता किन्तु वहाँ से मुक्त होने वाले तीर्थंकर भगवान् की मंगल स्मृति जागृत कर आत्म शुद्धि की जाती है। भगवान् के चिन्ह सचेतन अचेतन पशु पक्षी आदि भी हैं। जैनधर्म तीर्थंकर, उनकी वाणी और उनके उपदेशानुसार प्रवृत्ति करने वाले रत्नत्रय मूर्ति साधुओं को ही बंदनीय मानता है। निर्वाणस्थल, जन्मस्थल, तपोभूमि आदि के दर्शन द्वारा उन महान् आत्माओं की स्मृति सजीव हो जाती है, इसलिये उस भूमि के आश्रय से उन महापुरुषों का स्मरण किया जाता है। पशु-पक्षी आदि की पूजा का जैन शास्त्र से कोई संबंध नहीं है।

---

(१) जैनधर्म में चरण-चिन्ह पूजनीय हैं; चरणों की पूजा उचित नहीं है। मूर्ति का खंडित अंग चरण यदि पूज्यता को प्राप्त होता है, तो खंडित मूर्ति के सिर, हाथ आदि भी पूज्य माने जावेंगे। जब खंडित सिर आदि की पूजा को अयोग्य माना जाता है, तब चरणों की पूजा भी उचित नहीं कही जा सकती। अतः चरणों की पूजा कल्याणकारी नहीं है।

कुंथुनाथ भगवान

सम्मेद शिखर से मुक्ति प्राप्त करने वाले तीर्थंकरों के सम्बन्ध में कुछ परिचय अल्प प्रमाण में दिया जाना उचित प्रतीत होता है; कारण जब वन्दक उन तीर्थंकरों के निर्वाण स्थल पर उपस्थित होता है, तब उसका मन इन महाप्रभु के जीवन की विशेष बातें जानने की आकांक्षा करता है। उदाहरणार्थ भगवान कुंथुनाथ की टोंक पर सर्व प्रथम पहुँचते ही हृदय यह जानना चाहता है कि वे कौन थे? वे सत्रहवें तीर्थंकर थे।

तिलोय पण्णत्ति से ज्ञात होता है कि उनने सर्वार्थ सिद्धि से चयकर हस्तिनापुर में कुरुवंशी महाराज सूर्यसेन के यहां महारानी श्रीमती के उदर से बैसाख शुक्ला प्रतिपदा को जन्म धारण किया था। ये कामदेव, चक्रवर्ती तीर्थंकर हुये हैं। इनने बैसाख शुक्ला प्रतिपदा को अपराह्न काल में कृत्तिका नक्षत्र के रहते हुये सहेतुक वन में भक्ति के साथ सिद्धों को प्रणाम कर निर्ग्रन्थ दीक्षा ली थी।[1] यह बात विशेष ज्ञातव्य है कि चौबीस तीर्थंकरों में भगवान नेमिनाथ ने द्वारावती नगरी में दीक्षा ली थी। यद्यपि उनका जन्म-स्थान शौरीपुर था, किन्तु शेष तेईस तीर्थंकरों ने अपने अपने जन्म स्थानों में जिनेन्द्र दीक्षा ग्रहण की थी। इनके वैराग्य की उत्पत्ति में पूर्व जन्म की स्मृति कारण थी। जिस पालकी में दीक्षा कल्याणक के लिये वे विराजमान हुये थे उसका नाम विजया था। इनने दीक्षा के बाद एक उपवास कर दूसरे दिन धर्ममित्र राजा के यहां गोक्षीर से निष्पन्न अन्न-खीर से पारणा की थी। इस प्रकरण में यह बात स्मरण योग्य है कि भगवान ऋषभदेव ने एक वर्ष एक माह ९ दिन के उपरान्त इक्षुरस से पारणा की थी। यद्यपि सामान्यतः एक वर्ष शब्द का उल्लेख किया जाता है। उनने चैत्र कृष्णा नवमी के तीसरे पहर में उत्तराषाढ़ नक्षत्र के होते हुए सिद्धार्थ वन में दीक्षा ली थी और उनका आहार बैसाख सुदी तीज के दिन हुआ था। शेष तीर्थंकरों ने दीक्षा के अनंतर एक उपवास किया और दूसरे दिन खीर की पारणा की—"गोक्खीरे णिप्पण्णं अण्णं बिदियम्मि दिवसम्मि" (पृ० २२६ ति० प०)। कुंथुनाथ भगवान के साथ एक

---

(१) दारवदीए णेमी सेसा तेवीस तेसु तित्थयरा।
णिय-णिय-जादपुरेसुं गिण्हंति जिणिंद दिक्खाइं॥ ति० प० पृ० २२३

सहस्र राजकुमारों ने दीक्षा ली थी। उनकी टोंक पर जाकर यात्री को सोचना चाहिये कि इस स्थल से निर्वाण पाने वाले प्रभु तीर्थंकर और चक्रवर्ती का वैभव भोग कर उसे छोड़ मुनि बने थे, कारण उनने अनुभव के प्रकाश में देखा था कि पुद्गल की कोई भी सामग्री क्यों न हो, वह आत्मा को शान्ति प्रदान करने की सामर्थ्य से शून्य रहती है। विषय भोगों की कथा इस प्रकार है:—

भोग बुरे भव रोग बढ़ावे वैरी हैं जग जी के
वेरस होय विपाक समय अति सेवत लागें नीके।
वज्र आगनि विषसो विषधर सों ये अधिके दुखदाई
धरम रतन के चोर चपल ये दुर्गति पंथ सहाई।
ज्यों ज्यों भोग संजोग मनोहर मन वांछित जन पावे
तृष्णा नागिन त्यों त्यों डंके लहर जहर की आवे
मोह उदय यह जीव अज्ञानी भोग भले कर जाने
ज्यों कोई जन खाय धतूरो सो सब कंचन माने॥

चक्रवर्त्ती की विभूति ने तो शान्ति दी होगी, ऐसी जिनकी समझ है, वे वज्रनाभि चक्रवर्ती के हृदय के इन विचारों पर ध्यान दें।

मैं चक्री पद पाय निरंतर भोगे भोग घनेरे।
तो भी तनिक भये नहीं पूरन भोग मनोरथ मेरे॥

कुन्थुनाथ भगवान् ने १६ वर्ष पर्यन्त अखण्ड मौन रखा था। अनेक प्रकार की तपस्या द्वारा उनकी आत्मविशुद्धि बढ़ती जाती थी। जब चैत्र सुदी तीज का मंगल दिवस आया, तब अपराह्न काल में कृत्तिका नक्षत्र के रहते हुये सहेतुक वन में उनने ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय रूप चार घातिया कर्मों का क्षयकर सर्वज्ञता प्राप्त की थी। भगवान् ने तिलक वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया था इसलिये वह अशोक वृक्ष हुआ। उनके यक्ष का नाम गन्धर्व और यक्षी का नाम महामानसी था। तिलोयपण्णत्ति में लिखा है कि वे भक्ति से संयुक्त थे। यक्ष और यक्षिणी तीर्थंकर के समीप रहते थे।

इनके समवशरण में स्वयंभू आदि पैंतीस गणधर थे। सातसौ श्रुत केवली, ४३१५० उपाध्याय, २५०० अवधि ज्ञानी ३२०० केवल ज्ञानी ५१०० विक्रिया ऋद्धिधारी, ३३०० मनः पर्ययज्ञानी, २०५० वादी कुल मिलाकर ६०,००० मुनिराज थे। ६०३५० आर्यिका थीं। दो लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकाएं थीं। संख्यात तिर्यंच और असंख्यात देव देवी थे। प्रभुने विविध देशों में विहार किया। जब उनकी आयु एक माह की शेष रह गई तब वे इसी सम्मेद शिखर पर आये और वैसाख सुदी प्रतिपदा के दिन कृत्तिका नक्षत्र में प्रदोष काल में अपने जन्म नक्षत्र के रहते हुये सहस्र मुनियों सहित मोक्ष को प्राप्त किया—"सम्मेदे कुन्थुजिणो सहस्ससहिदो गदो सिद्धि (पृ.३०१, ति. प.)

इनके निर्वाण स्थल का नाम ज्ञानधर कूट है। भगवान ने कात्योत्सर्ग मुद्रा से मुक्ति प्राप्त की थी। तिलोयपण्णत्ति में लिखा है "भगवान् ऋषभदेव ने १४ दिन पहिले, महावीर भगवान् ने दो दिन पहिले और शेष तीर्थंकरों ने एक माह पूर्व योग से विनिवृत्त होने पर मोक्ष को प्राप्त किया। भगवान् ऋषभनाथ, वासपूज्य और नेमिनाथ ने पल्यंक आसन (पद्मासन) से और अन्य जिनेन्द्रों ने कायोत्सर्ग मुद्रा से मोक्ष प्राप्त किया था (ति. प. अध्याय ४—१२०८-१२१०)

उनकी गुणभद्र स्वामी ने इन शब्दों में वन्दना की है :—

ग्रंथान् कंथामिव त्यक्त्वा सद्ग्रंथान् मोक्षगामिनः
रक्षन् सूक्ष्मांश्च कुंथुभ्यः कुंथुः पांथान् स पातु वः ॥

"जिन्होंने कंथा के समान सब परिग्रहों को त्यागकर मोक्ष को दिखाने वाले ग्रन्थों की रक्षा की, तथा कल्याण करने के लिए सूक्ष्म से भी सूक्ष्म जीवों की रक्षा की, ऐसे भगवान कुन्थुनाथ तुम्हारी रक्षा करें।"

भगवान अरनाथ

भगवान कुन्थुनाथ की टोंक के समीप गौतम गणधर की टोंक प्राप्त होती है। उनका वहाँ से निर्वाण नहीं हुआ है, इसलिये उस

सम्बन्ध में विवेचन अनावश्यकसा लगता है।[1] वहाँ के दर्शन कर
तीर्थ यात्री पूर्व की ओर बढ़ता है तो उसे गिरनार पर्वत से निर्वाण
पाने वाले दया मूर्ति नेमिनाथ जिनेन्द्र की टोंक मिलती है। इसके
बाद अठारहवें तीर्थंकर अरहनाथ जिनेन्द्र का निर्वाण स्थल आता
है। वे कुन्थुनाथ भगवान् के समान कामदेव चक्रवर्ती तीर्थंकर हुये
हैं। उनने अपराजित नाम के अनुत्तर विमान से चयकर हस्तिनापुर
की भूमि को अपने जन्म द्वारा कृतार्थ किया था। इनके पिता महाराज
सुदर्शन और माता मित्रसेना थीं। मगसिर सुदी चौदस को पुष्यनक्षत्र में
उनने जन्म धारण किया था। तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करने वाली
पूज्य आत्माओं का जिस वैभव के साथ सुरेंद्र समाज जन्मोत्सव
आदि मनाता है, उसी प्रकार कल्याणक मनाया गया। जन्मकल्याणक
का वर्णन करने योग्य स्थान का अभाव है, इसलिए उस सम्बन्ध में
इतना ही कहा जा सकता है कि जीवन में ऐसे आनन्द का समय
अत्यन्त दुर्लभ है। कवि वृन्दावन ने चौबीस तीर्थंकर पूजा में यथार्थ
ही लिखा है।

जय जनम महोच्छव सुखद धार, भवि सारंग को जलधर उदार।
हरि गिरिवर पर अभिषेक कीन, झट ताण्डव निरत अरम्भ दीन॥
बाजन बाजत अनहद अपार, को पार लहत बरनत अपार॥

वे लिखते हैं—

करि के सहस्र कर को पसार, बहुभाँति दिखावत भाव प्यार।
निज भगति प्रगट जित करत इन्द्र, ताको क्या कहि सकै है कविंद्र॥
जहाँ रंग भूमि गिरिराज पर्म, अरु सभा ईश तुम देव शर्म।
अरु नाचत मघवा भगति रूप, बाजे किन्नर बज्जत अनूप॥
सो देखत ही छबि बनत वृन्द, मुख सों कैसे बरनै अमन्द।
धन घड़ी सोय धन देव आप, धन तीर्थंकर प्रकृति प्रताप॥
हम तुमको देखत नयन द्वार, मनु आज भये भव सिन्धु पार।

(१) उत्तर पुराण में पर्व ७६ में गौतम स्वामी के शब्द ध्यान देने योग्य हैं:—
"जिस दिन भगवान् महावीर मोक्ष पधारेंगे, उसी दिन मुझे भी घातिया कर्मों के
नाश होने से केवल ज्ञान रूपी नेत्र प्रगट होगा। भव्य जीवों को धर्मोपदेश देता
हुआ मैं अनेक देशों में विहार करूंगा और फिर विपुलाचल पर्वत पर मुक्त
होऊंगा" (गत्वा विपुल शब्दादिगिरौ प्राप्स्यामि निर्वृतिं, ५१७)

आगम में लिखा है कि अवर्णनीय दुख का अनुभव करने वाले नारकियों की वेदना का वर्णन करने की किसी में भी शक्ति नहीं है। जब पाप के विपाक से दुख के दावानल में दग्ध होने वाले नारकियों को भी क्षण भर के लिये जिनेन्द्र जन्म के प्रभाव से साता प्राप्त हो जाती है; तब इतर प्राणियों के हर्ष की क्या कथा?

पूर्व पुण्य के प्रभाव से अरनाथ प्रभु षट्खंड के विजेता चक्रवर्ती बने। एक दिन उनकी दृष्टि गगनमंडल में शोभायमान मेघों पर पड़ी। देखते-देखते वह मेघमाला अदृश्य हो गई। इससे उनके मन में जीवन के विषय में गम्भीर विचार उत्पन्न हुये। वे विचारने लगे कि इस मेघ के समान यह सम्पत्ति, राज्य वैभव सभी जाने वाला है, इसलिये इस जाल से निकलकर अपने आत्मा के अविनाशी आनन्द की प्राप्ति हेतु उद्योग करना चाहिये। कुटुम्बी-जन, प्रजा, राज्य, वैभव सब मुझ से भिन्न पदार्थ हैं। मैं चिरकाल से संसार में कर्मों का फल अनुभव करते रहा हूँ। वास्तव में यह जीव स्वयं कर्मों को बाँधता है और स्वयं उनका फल भोगता है। यह स्वयं संसार में भ्रमण करता है और स्वयं अपने पुरुषार्थ द्वारा जगत के परिभ्रमण से मुक्त होता है। उनने अपने पुत्र अरविन्दकुमार को राज्य देकर वैजयंती नामकी पालकी पर बैठकर सहेतुक वन की ओर प्रस्थान किया। उस दिन मगसिर सुदी दशमी थी। रेवती नक्षत्र आकाश में था। अपराह्न की वेला थी। इन्होंने चक्रवर्त्ति के सार्वभौम साम्राज्य को जीर्ण तृण तुल्य जान गजपुर छोड़ा और वे दिगम्बर जिनेन्द्र हो गये। भगवान के साथ एक हजार नरेशों ने भी दीक्षा ली थी। एक उपवास के अनन्तर उनका आहार अपराजित राजा के महल में हुआ था। उस समय सुर समाज ने उस दान के महत्व को प्रगट करते हुये पंचाश्चर्य प्रगट किये। दुन्दुभि ध्वनि, रत्नों की वर्षा, पुष्पों की वर्षा, शीतल सुगन्धित वायु का बहना और जय जय शब्द रूप पंच बातें हुई, जिससे उस महादान की महिमा जगत में व्याप्त हुई।

सोलह वर्ष पर्यन्त वे महान् तप करते रहे। इसके पश्चात् विविध प्रदेशों को अपने चरणों के द्वारा पवित्र करते हुए वे महाप्रभु पुनः गजपुर के उसी सहेतुक वन में पधारे। वे आम्रवन में विराजमान थे। कार्तिक सुदी द्वादशी को उन्होंने केवलज्ञान की महान निधि प्राप्त की। उस वन में ही प्रभु ने कषाय रूप सुभट्ट-विश्व विजेता पापी मोह को पछाड़ा।

स्वामी समन्तभद्र ने लिखा है "भगवान्! आपने कषाय
रूपी शूरों के समुदाय से सम्पन्न मोह, ज्ञानावरणादि घातिया कर्म रूप
पाप प्रकृतियों को, सम्यकदर्शन, सम्यकज्ञान और सम्यकचारित्र रूप
अस्त्रों के द्वारा जीत लिया। प्रभो! जो यम सम्पूर्ण मनुष्यों को दुखः
देता है, जो जन्म और रोग का मित्र है वही यम के सहारक आपको
प्राप्तकर स्वेच्छा पूर्ण प्रवृत्ति से विमुख हो गया।

भगवान्! निर्दोष विद्या रूपी नौका के द्वारा तत्काल एवं
परलोक में दुःख उत्पत्ति में कारण तृष्णा नदी, जिसको कष्ट से तरा
जाता है, उसको तरकर आप दूसरी पार पहुँच गये। आभूषण, वेश,
हथियार का त्याग करने वाली, विद्या, इन्द्रियदमन और कारुण्य पूर्ण
आपकी मुद्रा दोषों के निग्रह अर्थात जय को कहती है।" (९२-९४ वृ.
स्व.) भगवान् की दिव्य ध्वनि द्वारा विश्व में सच्चे धर्म की महिमा
प्रकाश मे आई। उनके समवशरण में ६१० श्रुत केवली ३५८००
उपाध्याय परमेष्ठी, २८०० अवधिज्ञानी, २८०० केवली, ४३०० विक्रिया-
ऋद्धिधारी, २०५५ विपुलमति मनः पर्यय वाले और १६०० वादी मुनि
थे। ६०००० आर्यिकायें थीं। श्रावकों की संख्याँ एक लाख साठ हजार
थी। श्राविकाओं की संख्या तीन लाख थी। शिरोमणी कुन्थुसेना
आर्यिका थीं। उनके समवशरण में आर्यकुम्भ आदि ३० गणधर थे।
आयु के एक माह शेष रहने पर वे सम्मेद शिखर पहुँचे और चैत्र
कृष्ण अमावस्या को रेवती नक्षत्र में उन्होंने एक हजार मुनियों के साथ
पद्मासन से रात्रि के प्रारम्भ में निर्वाण प्राप्त किया। ये भगवान्
तीर्थंकर, चक्रवर्ती और कामदेव इन तीन पदवियों के धारक थे।

वृन्दावन जी ने वीररसयुक्त रूपक अलंकार में अष्टकर्म विजेता
इन प्रभु के विषय में यह पद्य लिखा है—

तप तुरंग असवार धार, तारण विवेक कर।
ध्यान शुक्ल असिधार, शुद्ध सुविचार सुबखतर॥
भावन सेना धरम, दशों सेनापति थापे।
रतन तीन धर सकति मंत्री अनुभौ निरमापे॥
सत्तातल सोंह सुभट धुनि त्याग केत शत अग्र धरि।
इह विध समाज सज राजकों, अरजिन जीते करम अरि॥

इनके निर्वाण स्थल का नाम नाटक कूट है।

कवि कहते हैं—

वाहर भीतर के जिते, जाहर अरिदुखदाय।
ता हर कर 'अर' जिन भये, साहर शिवपुर राय॥

मल्लिनाथ भगवान्

आगे जाने पर बाल यति तीर्थंकर भगवान् मल्लिनाथ की टोंक मिलती है। उनके विषय में इस प्रकार परिचय दिया गया है।

अपराजित तें आय नाथ मिथिलापुर जाये।
कुम्भराय के नन्द प्रजावति मात वताये॥
कनक वरन तन तुंग धनुष पच्चीस विराजैं।
सो प्रभु तिष्ठहु आय निकट मम ज्यों भ्रम भाजैं॥

इनने अगहन सुदी एकादशी को जन्म धारण किया था। उस समय अश्विनी नक्षत्र था। जब इनकी अवस्था विवाह योग्य हुई तब महाराज कुम्भ के आदेश से प्रभु के विवाह के लिये मिथिलापुरी को खूब सजाया था। सभी लोग विवाह की तैयारी में थे। किन्तु मल्लिनाथ प्रभु का मन विवाह के वन्धन में फँसकर मोह राजा की आधीनता स्वीकार करने के विरुद्ध गम्भीर चिन्तन में लगा हुआ था। इन मल्लिनाथ प्रभु का अन्तःकरण शीघ्र ही साधुत्व को स्वीकार कर सदोन्मत्त मोह मल्ल को पछाड़ने को लालायित हो रहा था।

तिलोय पण्णत्ति में लिखा है कि भगवान के अन्तःकरण पर विश्व के क्षणिक पदार्थों के विचार ने वैराग्य भाव उत्पन्न किया। संयमी जीवन के प्रेमी लौकान्तिक देवों ने आकर प्रभु की उच्च भावना का समर्थन किया। भगवान् ने अनन्त भव में अगणित नारियों से विवाह करने की पद्धति का परित्याग करने का पक्का निश्चय किया और मुक्ति रमणी के पति बनने के लिये सर्व परिग्रह का त्याग किया। मोक्ष सुन्दरी उस पुरुष को ही अपना पति बनाती है जिसकी आत्मा का कंठाभरण वैराग्य और पूर्ण निर्ग्रन्थता रहती है।

भगवान् ने देव निर्मित जयन्त नामकी पालकी पर विराजमान होकर मगसिर सुदी एकादशी को अश्विनी नक्षत्र में पूर्वाह्न में तीन सौ राजकुमारों के साथ दीक्षा ली। तीसरे दिन नंदिषेण राजा के यहाँ

उनका प्रथम आहार हुआ। इस श्रेष्ठ पात्रदान से आनन्दित हो देवताओं ने पंचाश्चर्य प्रगट किये। भगवान् का मोह से ६ दिन युद्ध हुआ और उन्होंने पूस वदी दूज को अश्विनी नक्षत्र के होते हुए मोह को जीतकर केवल ज्ञान प्राप्त किया।[1]

कंकेली (अशोक) वृक्ष के नीचे प्रभु को कैवल्य हुआ था। इनका यक्ष वरुण और यक्षी विजया बताई गई है। भगवान् के समो-शरण में विशाख आदि २८ गणधर थे। २२०० केवली थे। ५५० श्रुत केवली थे। २९००० उपाध्याय थे, २२०० अवधि ज्ञानी थे, १७५० मनः पर्यय ज्ञानी १४०० वादी थे तथा २९०० विक्रिया ऋद्धिधारी थे। सब मिलाकर ४०००० मुनि थे। ५५,००० आर्यिकायें, २ लाख श्रावि-कायें, एक लाख श्रावक तथा संख्यात तिर्यंच और असंख्यात देव देवियाँ थीं। मुख्य आर्यिका का नाम बंधुपेणा था।

आचार्य समन्तभद्र ने लिखा है, "मैं उन मल्लिनाथ जिनेश्वर के शरण में जाता हूँ, जिनने शुक्लध्यान रुपी महान तपाग्नि के द्वारा अनन्त राशि भस्म की थी। जो इन्द्रिय विजेताओं में सिंह स्वरुप हैं और जिन्होंने संसारोच्छेद रुपी कार्य का सम्पादन कर कृत-कृत्यता प्राप्त की है।"

वृन्दावन जी ने भगवान् के केवलज्ञान के विषय में लिखा है—

पौष की श्याम दूजी हने घातिया, केवल ज्ञान साम्राज्य लक्ष्मी लिया।
धर्म चक्री भये सेव शक्री करें, मैं जजों धर्म ज्यों कर्म वक्री हरें॥

मोक्ष का तथा मोहमल्ल के मारने का मार्ग बताते हुये मल्लिनाथ-जिन पांच सहस्र मुनियों के साथ सम्मेदाचल पर पधारे। तब उनकी आयु एक मास प्रमाण शेष रही थी। इनने फाल्गुन सुदी

(१) तिलोयपण्णत्ति में भगवान् का छद्मस्थकाल ६ दिन ('मल्लिजिणे छद्दिवसा' ४-६७७) कहा है। उनकी दीक्षा मगसिर सुदी एकादशी को लिखी है (चार अध्याय—६६२) इस प्रकार केवलज्ञान पूस वदी दूज का निकलता है। किन्तु उसी तिलोयपण्णत्ति में केवलज्ञान फाल्गुन कृष्ण द्वादशी के अपराह्न में मनोहर उद्यान में उत्पन्न बताया है (४-६९९)। यह विषय विचारणीय है।

पंचमी के प्रदोष समय में भरणी नक्षत्र के रहते हुये पांच हजार मुनियों के साथ मोक्ष प्राप्त किया[1] कवि कहते हैं—

फाल्गुनी सेत पांचैं अघाती हते, सिद्ध आले बसे जाय सम्मेदतें।
इन्द्रनागेन्द्र कीनी क्रिया आयके, मैं जजों लो ध्यायकें गायकें॥

इनके निर्वाण की टोंक का नाम संबल कूट है।

भगवान् श्रेयांसनाथ

इसके अनन्तर भगवान् श्रेयांसनाथ की निर्वाण भूमि मिलती है। वे विमान से चयकर सिंहपुरी में महाराज विष्णु और महारानी नंदा देवी के यहाँ उत्पन्न हुए थे। भगवान् का जन्म फाल्गुन कृष्णा एकादशी को हुआ था, जब श्रमणनक्षत्र था। वृन्दावनजी लिखते हैं :—

जनमें फागुनकारी एकादशि तीनज्ञानदृगधारी।
इक्ष्वाकु वंशतारी, में पूजों घोर विघ्न दुखटारी॥

उनका क्रमिक विकास होकर तारुण्य लक्ष्मी ने उनके शरीर को अपूर्व सौन्दर्य समन्वित कर दिया। उनने राज्य का भार ग्रहण किया। शिष्ट अनुग्रह और दुष्ट निग्रह करते हुए नीति पूर्वक प्रजा का पालन किया।

एक समय वसन्त की सुन्दरता को ये देख रहे थे, और इनकी दृष्टि उस सुन्दरता के विनाश की तरफ गई—'सेयंस वसंतवणलच्छि-णासेण जादवेरग्गा' (ति० प० ४—६०९) इससे इनका चित्त भोगों से उदास हो गया। वैसे तो ये 'पद्मपत्र मिवांभसि'—जल में सरोज सदृश आसक्ति रहित थे, किन्तु अब इनका मन सच्चे श्रेय-पथ में जग कर निर्वाण को पा यथार्थ में श्रेयांसनाथ बनने का हुआ। इनकी पूजा में वृन्दावनजी लिखते हैं:—

भवतन भोग असारा, लख त्याग्यो धीर शुद्ध तपधारा।
फागुनवदि इग्यारा, मैं पूजों याद अष्ट परकारा॥

श्रेयस्कर पुत्रको राज्य देकर वे देवनिर्मित विमलप्रभा पालकी पर विराजमान होकर पूर्वाह्न में श्रमण नक्षत्र के होते हुए मनोहर उद्यान

(१) तिलोय पण्णत्ति में फाल्गुन वदी पंचमी को भगवान का मोक्ष लिखा है। (४—१२०३)

में पहुँचे और 'पञ्चजिणो पणमिऊण सिद्धाणं' सिद्धों को प्रणाम कर सर्व संग परित्यागी मुनि बन गए। इनके साथ एक सहस्र नरेशों ने दीक्षा ली थी। एक उपवास के पश्चात् प्रभु का आहार सिद्धार्थनगर के नन्दराजा के यहाँ हुआ।

इनका छद्मस्थकाल दो वर्ष प्रमाण रहा। माघ वदी अमावस्या को इनने घातिया कर्मों का क्षय करके संध्या के समय श्रमण नक्षत्र के होते हुए मनोहर उद्यान में तुंबुर वृक्ष के नीचे केवल ज्ञान को प्राप्त किया। इनके ७७ गणधर थे। मुख्य गणधर कुंथु नाम के महामुनि थे। इनकी यक्षी महाकाली और यक्ष कुमार कहे गए हैं। इनके समवशरण में छह हजार पांचसौ केवली थे। तेरहसौ ग्यारह श्रुतकेवली, अड़तालीस हजार दो सौ उपाध्याय, छः हजार अवधिज्ञानी, ग्यारह हजार विक्रिया ऋद्धिधारी, छः हजार मनःपर्ययज्ञानी और पांच हजार वादी मुनि थे। तथा एक लाख बीस हजार आर्यिका थीं। मुख्य गणिनी धारणा थीं। दो लाख श्रावक थे, चार लाख श्राविका थीं। इनके द्वारा अगणित जीवों का कल्याण हुआ।

इनका स्तवन करते हुए कवि मनरंगलाल कहते हैं:—

पग धरत होत तीरथ महान, सो परसत पावत अचल थान।
अब श्रेय करो श्रेयांसनाथ, मैं तुम्हें पाय हूवो सनाथ॥
जाके धन तेरे चरण दोय, ता गेह कमी कबहू न होय।
अब श्रेय करो श्रेयांसनाथ मैं तुम्हें पाय हूवो सनाथ॥
तुम चरण तनी परसाद पाय, बिन श्रम चिंतामणि मिलत आय।
अब श्रेय करो श्रेयांसनाथ मैं तुम्हें पाय हूवो सनाथ॥

उनकी भक्ति का क्या फल होता है, यह कहते हैं:—

सिद्धि रिद्धि भर पूर रहे ता गृह के मांही।
मंगल वृद्धि महान होय, नहिं घटे कदाही॥

तार्किक समन्तभद्र स्वामी लिखते हैं "प्रभो! आपने न्याय रूप बाणों के प्रहार द्वारा एकान्त वाद का निराकरण किया, मोह शत्रु का संहार करके कैवल्य प्राप्तकर समवशरणादि की लोकोत्तर विभूति

प्राप्त की और इससे कैवल्य विभूति के सम्राट् धर्म-चक्रवर्ती बने; अतः मेरी स्तुति के आप पात्र हैं।"

जब प्रभु की आयु एक वर्ष बाकी रह गई, तब सम्मेदाचल पर एक हजार राजाओं के साथ पहुँच कर उनने प्रतिमायोग अर्थात् कायोत्सर्ग मुद्रा धारण की और श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को पूर्वाह्न में धनिष्ठा नक्षत्र के रहते हुये सम्मेदगिरि से अविनाशी सिद्धि को प्राप्त किया। उस स्थल को संकुल कूट कहते हैं।

गिरि समेद तैं पायो, शिवथल तिथि पूर्णमासी सावन को।
कुलिशायुध गुन गायो, मैं पूजों आप निकट आवन को॥

आचार्य गुणभद्र की स्तुति बड़ी मार्मिक है:—

श्रेयः श्रेयेषु नास्त्यन्यः श्रेयसः श्रेयसे वुधैः।
इति श्रेयोर्थिभिः श्रेयः श्रेयांसः श्रेयसेऽस्तु नः॥

जो आश्रय योग्य हैं, उनमें श्रेयांस जिन को छोड़कर श्रेय के लिए अन्य कल्याणकारी नहीं हैं। अतः मोक्ष की कामना करने वालों को श्रेयांसनाथ भगवान का ही आश्रय होना चाहिए। ऐसे भगवान श्रेयांसनाथ तीर्थंकर हमारा भी कल्याण करें।

पुष्पदन्त भगवान्

इसके पश्चात् पुष्पदन्त भगवान् का सुप्रभ कूट नामक टोंक आती है। इनने इक्ष्वाकवंश वाले काकंदी पुरी के नरेश सुग्रीव महाराज की महारानी जयरामा के गर्भ से मगसिर सुदी प्रतिपदा के दिन जन्म ग्रहण किया था। वृन्दावनजी लिखते हैं:—

पुष्पदन्त भगवन्त सन्त सुजपंत तंत गुन।
महिमावंत महंत कन्त शिव तियर मंत गुन॥
काकंदीपुर जनम पिता सुग्रीव रमा सुत।
स्वेत वरन मनहरण तुम्हैं थापों त्रिवार नुत॥

ये आरण स्वर्ग से चलकर सुग्रीव महाराज के यहाँ आये थे।

जब भगवान् ने युवा अवस्था प्राप्त की, तब भगवान् का विवाह अनुपम वैभव पूर्वक हुआ। उनके हाथ में राज्य शासन आते ही प्रजा को अवर्णनीय सुख और शान्ति मिली।

एक दिन उनकी दृष्टि आकाश से उल्कापात की ओर गई। उसे देख वे गम्भीर तत्व चिंतन में निमग्न हो गये। उनके ज्ञान नेत्र खुल गये। उससे यह दिखने लगा कि अब भी इन्द्रियों के फन्दे में फंसा रहना कदापि उचित नहीं है। उनके द्वारा जीव की कभी भी लालसापूर्ण नहीं हुई है। जीव का सच्चा कल्याण सब विभाव का परित्याग कर आत्म स्वरूप में निमग्न होना है। उनके पवित्र विचारों का समर्थन लोकान्तिक देवों ने किया। सुमति नाम के राजकुमार को अपना उत्तराधिकारी बना सूर्यप्रभा पालकी पर आरूढ़ हो पुष्पदन्त प्रभु पुष्पक वन की ओर गये और पूस सुदी ग्यारस को अपराह्न में अनुराधा नक्षत्र के रहते हुये एक हजार राजाओं के साथ जिन दीक्षा ली।

एक दिन के पश्चात शैलपुर के राजा पुष्पमित्र ने नवधा भक्ति पूर्वक उन्हें पड़गाहा और श्रेष्ठ रीति से श्रेष्ठ फल देने वाले श्रेष्ठ पात्र को आहार दिया। इनका छद्मस्थ काल ४ वर्ष था। कार्तिक शुक्ला दूज को, अपराह्न काल में मूल नक्षत्र के रहते हुये पुष्पवन में पुष्पदन्त भगवान् ने केवलज्ञान प्राप्त किया। वृन्दावनजी लिखते हैं :—

> सितकार्तिक गाये दोइज धाये घाति करम परचंडाजी।
> केवल परकाशे भ्रमतमनाशे सकल सारसुख मंडाजी॥
> गनराज अठासी आनंदभासी समवसरण वृषदाता जी।
> हरि पूजन आयो शीश नवायो हम पूजैं जग ताताजी॥

इनके अठासी गणधर थे, जिनमें प्रमुख विदर्भ नाम के थे समवसरण में कुल मिलाकर दो लाख मुनी थे। उनमें ७५०० केवली से, ७५०० विपुल मति ज्ञान धारी, श्रुतकेवली १५००, उपाध्याय १५५५००, अवधिज्ञानी ८४००, विक्रिया ऋद्धि वाले १३००० और वादी मुनि ६६०० थे। तीन लाख अस्सी हजार आर्यिका थीं उनमें घोषा नाम की आर्यिका प्रधान थीं। श्रावक दो लाख थे श्राविकायें पाँच लाख थीं। इनका यक्ष ब्रह्म और यक्षी काली नामकी थी।

समन्तभद्र स्वामी प्रभु की स्तुति में कहते हैं "भगवन्! आपका वाक्य मुख्य और गौण अर्थों को धारण करता है। वह आपके स्याद्वाद तत्वज्ञान के द्वेषियों को अनिष्ट रूप होता है। इसीलिये आपके चरण कमल को न केवल इन्द्र चक्रवर्त्ति आदि जगत के ऐश्वर्य शाली

नमस्कार करते हैं बल्कि वे मुझ समन्तभद्र के द्वारा भी पूज्य हैं।
(४५ स्व. स्तोत्र)

वाग्भट्ट कवि कहते हैं "भगवान् पुष्पदन्त हमें कल्याण प्रदान करें, जिनने अपने महान तेज द्वारा पुष्पदन्त को (सूर्य-चन्द्र को) जीता है। हाथ के विस्तार द्वारा पुष्पदन्त नाम के दिग्गज को जीता है तथा जिनकी त्रिकाल सेवा में पुष्पदन्त देव रहते हैं।"

जगत् में धर्म की देशना करते हुए वे प्रभु एक हजार मुनियों के साथ सम्मेद शिखर पधारे और उन्होंने भादों सुदी अष्टमी के दिन अपराह्न काल में एक हजार मुनियों के साथ निर्वाण को प्राप्त किया। कवि मनरंगलाल ने लिखा है।

सुदी अष्टमि परवान, भादों मास समेदते।
शिव पद लियो महान, जजो अरघ सों चरण युग॥

पद्मप्रभु जिनेन्द्र

इसके अनन्तर भगवान पद्म प्रभु का निर्वाण स्थल मिलता है। वे प्रभु अन्तिम ग्रैवेयक के प्रीतिकर विमान से चय कर कौशाम्बी नगरी में माता सुसीमा के उदर से राजा धरण के यहां आसोज वदी त्रयोदशी के दिन चित्रा नक्षत्र में उत्पन्न हुये। उत्तर पुराण में उनका जन्म मघा नक्षत्र में कातिक वदी त्रयोदशी बताया है। कवि वृन्दावन लिखते हैं—

पदमराग मनि वरन धरन तन तुंग अढ़ाई।
शतक दंड अघखंड, सकल सुर सेवत आई॥
धरनि तात विख्यात सुसीमा जु के नन्दन।
पद्म-चरण धरि राग सुथापों इत करि वन्दन॥

भगवान ने तरुण अवस्था में अनेक राज कन्याओं से विवाह किया और सांसारिक सर्व प्रकार के आनन्द अनुभव किये। उन्होंने राजा के रूप में अपनी प्रजा को सर्व प्रकार का सुख प्रदानकिया। एक दिन भगवान को अपने राज महल के द्वार पर बंधे हुये गजराज की दशा सुनकर अपने पूर्व भवों का स्मरण हो गया। इससे वे प्रतिबुद्ध हो गये। उनके हृदय में वैराग्य की ज्योति जगी। वे सोचने लगे

" संसार में सब प्राणी भोगों की लालसा रूप दावानल में दग्ध हो रहे हैं। ऐसा कौन है जो सुख नहीं चाहता किन्तु विषयान्ध बन सब दुख के कारणों का संचय किया करते हैं। मेरा कर्त्तव्य है कि मैं सच्चे आत्म कल्याण और अविनाशी सुख की प्राप्ति के लिये मुनि-पद स्वीकार करूं। "

वे अपने पुत्र के ऊपर राज्य भार सौंप कर निवृत्ति नाम की पालकी पर विराजमान होकर शाम के समय कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी को चित्रा नक्षत्र में मनोहर वन में पहुँचे। वहां उनने एक हजार राजाओं के साथ जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। एक दिन के बाद उनका आहार वर्धमानपुर के राजा सोमदत्त महाराज के यहां हुआ। भगवान ने छह माह पर्यन्त मौन धारण कर अपूर्व तपश्चर्या की। उनको मनोहर उद्यान में चित्रा नक्षत्र के रहते हुए वैसाख सुदी दशमी के अपराह्न काल में केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। उत्तरपुराण में चैत्र पूर्णिमा को केवलज्ञान का दिन लिखा है। वृन्दावन जी कहते हैं—

सुकल पूनम चैत सुहावनी, परम केवल सो दिन पावनी।
सुर सुरेश नरेश जजैं तहां, हम जजैं पद पंकज को इहाँ॥

उनके वज्रचामरादि नामक एक सौ दस गणधर थे। समवसरण में १२,००० केवली, २,३०० श्रुत केवली, उपाध्याय २,६९,०००; अवधि ज्ञानी दश हजार, विक्रिया ऋद्धि धारी १६,८००, विपुल मति वाले १०,३००, वादी मुनि ९,६००; कुल मिलाकर तीन लाख तीस हजार मुनिराज थे। चार लाख बीस हजार आर्यिकायें थी, उनमें मुख्य रति षेणा थीं। तीन लाख श्रावक थे और पाँच लाख श्राविकायें थीं। उनका भक्त यक्ष मातंग नाम का था। यक्षी का नाम अप्रतिचक्रेश्वरी था। इनके द्वारा असंख्यात आत्माओं का महान् कल्याण हुआ।

स्वामी समन्तभद्र उनकी स्तुति में लिखते हैं। "भगवन! आप का वर्ण पद्म के समान प्रभा युक्त होने से आप पद्म प्रभु हैं। आपकी लेश्या पद्म पत्र समान शुक्ल है। आपकी मनोग्य मूर्ति पद्मनिवासिनी लक्ष्मी से संयुक्त होने से मनोहर है। आप भव्य कमलों के लिये उसी प्रकार हैं जैसे पद्मबन्धु (सूर्य) पद्माकर (कमल-पुन्ज) को शोभित करता है।

आपने मुक्ति लक्ष्मी प्राप्त होने के पूर्व केवल-ज्ञान लक्ष्मी और समवसरण लक्ष्मी को धारण किया। परिपूर्ण शोभायुक्त केवल ज्ञान लक्ष्मी को आपने धारण किया है और विमुक्त होने पर आपने निर्मल सर्वज्ञ लक्ष्मी को अंगीकार किया है। हे देव ! आपके गुण समुद्र के छोटे से अंश का कथन करने में इन्द्र भी असमर्थ हैं, तब मैं अल्पज्ञानी कैसे समर्थ हो सकता हूँ ? फिर भी आपकी तीव्र भक्ति मुझ अल्पज्ञ को इस प्रकार स्तुति करने की प्रेरणा करती है।"

—स्वयंभूस्तोत्र (२७, २८, ३०)

यतिवृषभ आचार्य के कथनानुसार भगवान् ने माघ वदी चौथ को अपराह्न काल में सम्मेद शिखर के मोहन कूट से ३२४ मुनियों के के साथ निर्वाण प्राप्त किया; (ति. प. ४—११९०)। उत्तरपुराण में लिखा है कि भगवान् ने फाल्गुन कृष्णा चतुर्थी के दिन चित्रा नक्षत्र में शाम के समय एक हजार मुनियों के साथ मोक्ष प्राप्त किया था तथा देवों ने निर्वाणोत्सव मनाया था।
आचार्य गुणभद्र कहते हैं :—

पद्मेऽस्थास्नुर्न भातीव प्रभास्मिन्निति वाश्रिता।
त्यक्त्वा तं यं स पद्मास्मान् पातु पद्मप्रभः प्रभुः॥

लक्ष्मी कमल में स्थिर न रहने के कारण शोभायमान नहीं होती, अतः उसने कमलवास को त्याग जिनका आश्रय लिया है ऐसे पद्मप्रभ भगवान् हमारी रक्षा करें।

भगवान मुनिसुव्रत

इसके अनन्तर भगवान मुनिसुव्रत नाथ की निर्जरा कूट प्राप्त होती है। तिलोयपण्णत्ति में कहा है कि इन प्रभु ने आनत स्वर्ग से चलकर माता पद्मा के उदर से महाराज सुमित्र के यहां राजगृह नगर में आसोज सुदी द्वादशी को श्रवण नक्षत्र में जन्म धारण किया। उत्तर पुराण में प्राणत स्वर्ग से इनके चय करने का वर्णन आता है। वहाँ माता का नाम सोमा लिखा है। वृन्दावन जी ने लिखा है—

प्रानत स्वर्ग विहाय लियो जिन, जन्म सुराजगृही मंह आई।
श्री सुहमित्त पिता जिनके, गुनवान महा पदमा जसु माई॥

वीस धनू तनु श्याम छवी, कछ अंक हरी वर वंश वताई।
सो मुनि सुव्रत नाथ प्रभु कहँ, थापतु हौं इत प्रीति लगाई॥

इनका जन्म कहीं-कहीं वैसाख वदी दशमी लिखा है। वृन्दावन जी की पूजा में यह पाठ आया है।

वयसाख वदी दशमी वरनी जनमें तिहीं द्योस त्रिलोक धनो।
सुर मन्दिर ध्याय पुरन्दर ने मुनिसुव्रतनाथ हमें सरनै॥

बाल्य जीवन के अनन्तर भगवान जब विवाह योग्य हुये, तब उनका अनेक सर्वगुण सम्पन्न कन्याओं के साथ विवाह हुआ। पिता ने राज्य का अधिपति इन्हें ही बनाया। एक दिन की बात है मेघ गर्जना को सुनकर उनके प्रमुख हाथी ने खाना पीना छोड़ दिया। अवधिज्ञान से भगवान ने उसके बारे में विचार कर कहा, पहिले भव में यह गजराज एक राजा था। इसने अभिमान पूर्वक दान दिया था, जिससे यह हाथी हुआ। इस हाथी को अज्ञान के कारण इस बात का पता नहीं है। यह वन की याद कर दुखी हो रहा है। भगवान के वचन सुन हाथी को पूर्व भव का स्मरण आ गया। उसने व्रत धारण किए। भगवान भी भोगों से उदास हो गये, कारण संसार के स्वरूप को वे भली प्रकार जान गये। उन्होंने अपने पुत्र विजय को राज्य दिया। अपराजिता पालकी पर आरूढ़ हो नीलवन में पहुँचे और वैसाख वदी दशमी के दिन श्रवण नक्षत्र के रहते हुए एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ली। इनका छद्मस्थकाल ग्यारह माह का है। इनने फाल्गुन वदी छठ को पूर्वाह्न के समय नीलवन में ही श्रवण नक्षत्र के रहते हुये केवल ज्ञान प्राप्त किया।

मुनिसुव्रत भगवान् के गणधरों की संख्या १८ है। मुख्य गणाधीश मल्लि नाम के महामुनि थे। आर्यिका ५०,००० थीं; मुख्य आर्यिका का नाम पूर्वदत्ता तिलोय पण्णत्ति में दिया है। उत्तर पुराण में पुष्पदत्ता नाम आया है। श्रावक १ लाख थे और श्राविकायें ३ लाख थीं। देव देवियों का समुदाय असंख्य था। तिर्यंचों की गणना तथा मनुष्यों की गिनती प्रत्येक तीर्थङ्कर के तीर्थ में संख्यात कही गई है। यक्षी का नाम अपराजिता है और यक्ष का नाम भ्रकुटि है। इनने चंपक वृक्ष के नीचे सर्वज्ञता प्राप्त की थी। यही वृक्ष इनके समवशरण में अशोक वृक्ष हुआ, जो लटकती हुई मालाओं से

युक्त, घंटा समूहादिक से रमणीय होते हुए पल्लव एवं पुष्पों से झुकी हुई शाखाओं से शोभायमान होता था (ति० प० २६४)। इनके समवशरण में ३० हजार ऋषियों की संख्या कही गई है। वहाँ एक हजार आठ सौ केवली, तथा उतने ही अवधि ज्ञानी मुनि, श्रुतकेवली ५००, उपाध्याय २१ हजार, विक्रिया ऋद्धिधारी २२००; विपुल मति वाले १५०० और वादी मुनि १२०० थे।

जीवों के भाग्य से भगवान के समवशरण का बिहार[1] आर्य क्षेत्रों में हुआ। इससे असंख्य जीवों को सच्चे धर्म का मार्ग मिला।

जब भगवान् की आयु १ माह रह गई तब १००० राजाओं सहित वे शिखरजी पहुँचे। और उन्होंने प्रतिमा योग धारण कर फाल्गुन वदी १२ के दिन प्रदोष समय में, श्रवण नक्षत्र के रहते हुए १००० मुनियों सहित मोक्ष प्राप्त किया।

वृन्दावनजी ने लिखा है—

"वदि बारस फागुन मोच्छ गए। तिहुँ लोक शिरोमनि सिद्ध भये।
सु अनन्त गुनाकर विघ्न हरी। हम पूजत हैं मन मोद भरी॥"

स्वामी समन्तभद्र कहते हैं—

"जिनेन्द्र आपने शुक्ल ध्यान अनुपम योग के द्वारा आठ कर्मरूपी कलंक विनाश किया और अलौकिक आनन्द के अधिपति बने। आप मेरे भी संसार के दुःखों की उपशान्ति के हेतु बनें।"

गुणभद्राचार्य कहते हैं—

निवृत्तौ व्रतशब्दार्थो यस्याभूत्सर्ववस्तुषु।
देयान्नः स व्रतं स्वस्य सुव्रतो मुनिसुव्रतः॥

जिनके नाम के व्रत शब्द का अर्थ सभी पदार्थों का त्याग था और जिनके व्रत उत्तम थे, वे मुनिसुव्रत भगवान् हमको भी व्रत दें।

---

(१) "आर्य क्षेत्राणि व्यहरच्चिरम्।" (उत्तर-पुराण ७०-५४)

भगवान चंद्रप्रभ

इसके अन्तर भगवान चंद्रप्रभ की ललित कूट नाम से प्रसिद्ध निर्वाण भूमि प्राप्त होती है। पर्वत के कोने पर दूर होने से और ऊंचा स्थान होने के कारण यहां जाते समय यात्री विशेष श्रांत सा हो जाता है। थके हुए व्यक्ति को सोचना चाहिए—यह निर्वाण स्थल उन तीर्थंकर का है, जिनकी मूर्ति के प्रकाशन द्वारा स्वामी समतभद्र ने शिव कोटि राजा का मिथ्यात्व दूर कर जैनधर्म की महिमा जगत के अंतःकरण पर अंकित की थी।

एक आरती का यह अंश कितना सुंदर है :—

" चंदा प्रभु शरण तिहारी गही.......

पर दुख भंजन नाथ विरद तुव, तातें मैंने आन कही।

धर्मपाल जब तुमकों निरखें, तब सबरी मेरी व्याधि गई॥

चंदा प्रभु शरण तिहारी गही।"

भगवान चंद्रप्रभ वैजयंत नाम के अनुत्तर विमान से चयकर चंद्रपुरी के इक्ष्वाकुवंशी नरेश राजा महासेन को पुण्यशीला महारानी लक्ष्मणा के गर्भ में पधारे और पौष कृष्णा एकादशी को अनुराधा नक्षत्र में उनने अपने जन्म द्वारा त्रिभुवन को शांति प्रदान की। बाल्य जीवन उत्कृष्ट आनंद से व्यतीत हुआ। यौवन का काल आया। राज्य मिला। सब प्रकार सुख संपदा महान पुण्य से प्राप्त हुई।

एक दिन वे अलंकार गृह में गए। उनने दर्पण में अपना मुख देखा। तत्काल उनके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो गया। उनने अपनी आत्मा को दर्पण के समान विशुद्ध बनाने का विचार किया, जिसमें लोक और अलोक के पदार्थ स्वयं सर्वदा प्रतिबिंबित हुआ करते हैं। वे सोचने लगे कि इस शरीर में राग होने से अन्य वस्तुओं से भी मोह स्वयमेव हो जाता है। इसलिए मैं ऐसा प्रयत्न करूंगा कि जिससे आगामी भव में ऐसे दुःख के बीज शरीर की पुनः प्राप्ति न हो।

उनने विमला नामक देव निर्मित पालकी पर आरूढ़ हो। पौष कृष्णा एकादशी को अनुराधा नक्षत्र में सर्वर्तुक वन की ओर प्रस्थान किया। वहां वे एक हजार नरेन्द्रों के साथ निर्ग्रंथ मुनि बन गए। वृन्दावन जी ने लिखा है :—

तप दुद्धर श्रीधर आप धरा। कलि पौष इग्यारसि पर्व वरा।
निजध्यान विषै लव लीन भये। धनि सो दिन पूजत विघ्न गए॥

दीक्षा के बाद तीसरे दिन वे आहार को निकले। भाग्यशाली नलिनपुर के नरेश सोमदत्त महाराज ने नवधा भक्तिपूर्वक इन उत्कृष्ट-पात्र को प्रथमबार खीर का आहार दिया था।

प्रभु की पूजा में लिखा है :—

सित पय को पारण परम सार, सित चंद्रदत्त दनों उदार।
सित कर में सो पयधार देत, मानों बांधत भव सिन्धु सेत॥
मानों सुपुण्य धारा प्रतच्छ, तित अचरज पन सुर किय ततच्छ।
फिर जाय गहन सित तप करंत, सित केवल ज्योति जग्यो अनंत॥

उनका तीन माह तक छद्मस्थ काल रहा [1]। पश्चात् फाल्गुन कृष्णा सप्तमी के दिन के पश्चिम भाग में अनुराधा नक्षत्र के रहते हुए सर्वतुक वन में उनको सर्वार्थों को ग्रहण करने वाला केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

उत्तरपुराण में लिखा है कि भगवान् के समवशरण में ३ लाख ८० हजार आर्यिकायें थीं। मुख्य आर्यिका का नाम वरुणा था। ३ लाख श्रावक, ५ लाख श्राविकायें थीं। गणधर ९३ थे। मुख्य गणधर का नाम तिलोयपण्णत्ति में वैदर्भ दिया है। उत्तर पुराण में उनका नाम दत्त कहा गया है। प्रभु के समवशरण में केवली दस हजार, दो हजार श्रुत केवली, २ लाख ४ सौ उपाध्याय, अवधिज्ञानी आठ हजार, मनः पर्यय ज्ञानधारी ८ हजार, विक्रियाऋद्धिधारी चौदह हजार, और वादी मुनि ७ हजार छह सौ थे। सब मुनि दो लाख पचास हजार थे।

---

[1] भगवान् की दीक्षा पौष बदी एकादशी को हुई थी और केवल ज्ञान फाल्गुन कृष्ण सप्तमी को हुआ। इस तरह ५६ दिन का काल छद्मस्थ अवस्था का हुआ। किन्तु तिलोय पण्णत्ति में तथा उत्तर पुराण में ३ माह लिखा है।

सर्वत्र विहार कर उनने धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति की तथा अंत में सम्मेद शिखर पर आ विराजमान हुए। वहाँ इन्होंने १ हजार मुनियों सहित प्रतिमा योग धारण किया और भादों सुदी सप्तमी को पूर्वा काल में ज्येष्ठ नक्षत्र के रहते हुए १ हजार मुनियों के साथ मोक्ष प्राप्त किया।[1]

इनके यक्ष का नाम (ति. प. में) अजित और यक्षी का मनोवेगा बताया गया है (४-९३४)। अन्यत्र भगवान् की यक्षी का नाम ज्वाला-मालिनी और यक्ष का नाम ब्रह्मेश्वर प्रसिद्ध है।

भगवान् चन्द्रप्रभु की स्तुति करते हुए स्वामी समन्तभद्र ने लिखा है—"मैं चन्द्रमा की किरणों सदृश गौर वर्णयुक्त, जगत् में अत्यन्त मनोज्ञ, द्वितीय चंद्रमा के समान इन्द्रादि महिमा शालियों द्वारा अत्यंत वंदनीय, गणधरादिकों के स्वामी, संपूर्ण कर्मों के नाशक तथा कषाय बंधन से उन्मुक्त अंतःकरणवाले भगवान चन्द्रप्रभु को प्रणाम करता हूँ।

जिनके शरीर सौंदर्य के मंडल द्वारा विदारित अंधकार, सूर्य के द्वारा नाश किए गए बाह्य अंधकार सदृश क्षय को प्राप्त हुआ, उन चन्द्रप्रभु भगवान के शुक्लध्यान प्रदीप के प्रताप से अंतःकरण स्थित महान अंधकार दूर हुआ।

अपने सिद्धांत की सत्यता के अंहकार से युक्त एकांतवादी जिनकी वाणी रूप सिंहनाद द्वारा निर्मद हुए; जिसप्रकार मद से भीगे हुए कपोल युक्त गजराज सिंह की गर्जना से मद रहित होते हैं।

जो संपूर्ण प्राणियों के प्रबोधन कार्य में निमित्त रूप केवल ज्ञान तेज से युक्त हैं, त्रिभुवन में परमेष्ठी के पद को प्राप्त कर चुके हैं, अनंत तेज युक्त अविनाशी विश्व के प्रकाशित करने वाले नेत्र सदृश हैं और जिनका शासन समस्त दुःखों का क्षय करने वाला है।

---

१ उत्तरपुराण में उनका मोक्ष काल फाल्गुन सुदी सप्तमी बताया गया है। **वृन्दावनजी** की पूजा में लिखा है :—

सित फाल्गुण सप्तमि मुक्ति गए। गुणवंत अनन्त अबाध भये।
हरि आय जजें तितमोदधरे। हम पूजत ही सब पाप हरे॥

भव्य-रूपी कमलों को विकसित करने वाले चंद्रमा सदृश, अज्ञानादि दोष तथा ज्ञानावरणादि कर्मरूप मेघ तथा कलंक से मुक्त, विकसित वाणी रूप न्याय के निरूपण करने वाली किरणमाला से शोभायमान वे कर्ममल विशुद्ध भगवान् चन्द्रप्रभु मेरे मन को पवित्र करें।"

भूधर शतक में लिखा है :—

चितवत बदन अमल चन्द्रोपम तज चिन्ता चित होय अकामी।
त्रिभुवन चन्द्र पाप तम चन्दन नमत चरण चन्द्रादिक नामी॥
तिहुँ जगछई चन्दका कीरति चिहन चन्द्र चिन्तत शिवगामी।
बन्दू चतुर चकोर चन्द्रमा चन्द्र धरण चन्दा प्रभु स्वामी॥

आदि जिनेन्द्र

भगवान् चन्द्रप्रभु की टोंक से आगे चलकर आदिनाथ तीर्थंकर की टोंक मिलती है। इन भगवान का मोक्ष स्थान कैलाश है। कहा भी है "नमो ऋषभ कैलास पहाड़" अथवा 'कैलाशे वृषभस्य निर्वृति मही,' तब यहां इनकी टोंक का क्या प्रयोजन है?

इसका समाधान इस प्रकार हो सकता है। सम्मेद शिखर सदा से सभी तीर्थंकरों का निर्वाण स्थल रहा है। यह तो हुँडावसर्पिणी काल का प्रसाद है, जो चार तीर्थंकरों के पृथक्-पृथक् निर्वाण स्थल हो गये हैं। हुंडावसर्पिणी के विषय में में पारस-पुराण में लिखा है—

अवसर्पनि उतसर्पनी काल होंहिं अनंतानंत विशाल।
भरत तथा ऐरावत माहीं रँहट घटीवत आवें जाहिं॥
जब ये असंख्यात परमान बीते जुगल खेत भू-थान।
तब हुंडावसर्पिणी एक परै करै विपरीत अनेक॥

तिलोयपण्णत्ति में लिखा है "असंख्यात अवसर्पणी—उत्सर्पणी काल की शलाकाओं के बीत जाने पर एक हुन्डावसर्पणी आती है। (४-१६१५)

सम्मेद शिखर में धर्म के प्रथम तीर्थंकर के निर्वाण की स्मृति बन्दना करने वाले के मन में आये बिना रहेगी। अतएव प्रतीत होता

है कि जिस प्रकार आत्मकल्याण के लिये पाषाण की मूर्ति में ऋषभदेव आदि तीर्थंकरों की स्थापना कर पूजन आदि द्वारा पाप का विनाश और पुण्य की प्राप्ति की जाती है, इसी प्रकार यहां पावन-स्मृति के हेतु भगवान आदिनाथ के चरण चिन्हों की स्थापना की गई। उनको प्रणाम करते हुये भव्यजीव कैलास पर्वत में विद्यमान निर्वाण क्षेत्र का स्मरण कर प्रभु को प्रणाम करता है। पर्वत पर बीस तीर्थंकरों के सिवाय अन्य तीर्थंकरों के चरणों की स्थापना का भी यही रहस्य प्रतीत होता है। बीस तीर्थंकरों का सम्मेद शिखर साक्षात निर्वाण स्थल है ही। स्थापना निक्षेप द्वारा वह अन्य तीर्थंकरों का निर्वाण स्थल मान कर पूजा जाता है।

आजकल भगवान के निर्वाण स्थल कैलाशगिरि का ठीक-ठीक पता अब तक नहीं चल पाया है इसलिये स्थापना निक्षेप द्वारा यहां ही कैलाश भूमि की स्थापना कर प्रभु का गुण स्मरण लाभप्रद प्रतीत होता है। स्वामी समन्तभद्र ने आदिनाथ प्रभु के विषय में इस प्रकार कथन किया है—"जिनने शुक्लध्यान रूप आत्म समाधि स्वरूप अग्नि के द्वारा अपनी आत्मा के रागादि दोषों के मूल कारण घातिया चतुष्ट का निर्मूल नाश किया और तत्वज्ञान के पिपासु प्राणियों के लिये तत्व का स्वरूप कहा और ब्रह्मपद अर्थात् मोक्ष के अमृत रूप अनन्त आनन्द के जो स्वामी बने, वे विश्व-चक्षु अर्थात् केवलज्ञान धारी, इन्द्रादि सत्पुरुषों के द्वारा पूजित, परिपूर्ण ज्ञान स्वरूप शरीर धारी, अज्ञानरूपी अंजन से रहित, क्षुद्र एकान्त पक्ष वालों के शासन को जीतने वाले महाराज नाभिराय नाम के चौदहवें कुलकर के आत्मज बाह्य तथा अंतरंग कर्म शत्रुओं का उच्छेद करने वाले आदि जिनेन्द्र मेरे मन को पवित्र करें।" मानतुंग मुनी ने इन आदि प्रभु के चरण युगल को "भवजले पतितां जनानां आलम्बनं" संसार सिन्धु में पड़े हुये प्राणियों को बचाने के लिये आलम्बन स्वरूप कहा है। वृन्दावन उनके निर्वाण के विषय में कहते हैं—

असित चौदसि माघ विराजई। परम मोक्ष सुमंगल साजई।
हरि समूह जजे कयलास जी। हम जजैं अति धार हुलासजी॥

आचार्य यतिवृषभ ने लिखा है :—

माघस्स किण्हचोद्दसि पुव्वण्हे णियय जम्मणक्खत्ते।
अट्ठावयम्मि उसहो अजुदेण समं गओ णोमि॥

ऋषभ तीर्थंकर माघ कृष्णा चतुर्दशी के पूर्वाह्न काल में अपने जन्म नक्षत्र के रहते हुए कैलास पर्वत से दस हजार मुनियों के साथ मुक्ति को प्राप्त हुये हैं। उनको मैं नमस्कार करता हूँ।

भगवान शीतलनाथ

इसके पश्चात् आत्मा को शीतलता प्रदान करने वाले भगवान शीतलनाथ प्रभु की विद्युतवर टोंक आती है। उनके पिता इक्ष्वाकुवंशी नरेश दृढ़रथ महाराज की महारानी सुनन्दा के उदर से माघ कृष्णा द्वादशी को भद्दलपुर में उत्पन्न हुये थे। उस समय पूर्वाषाढ़ नक्षत्र था। तिलोयपण्णत्ति में लिखा है, कि ये अच्युत स्वर्ग से च्युत होकर वहां उत्पन्न हुये थे। सम्पूर्ण सुख के सागर में थे निमग्न थे। प्रजा इन जैसे नरेश को पाकर अपने भाग्य को सराहती थी। पाँचों इन्द्रियों को परितृप्त करने वाले श्रेष्ठ भोगों की सीमा न थी।

एक दिन शीतलनाथ भगवान वनश्री का सौंदर्य देखने गये थे, तब सभी वृक्ष हिम से आच्छादित थे। कुछ काल के पश्चात् प्रभात कालीन सूर्योदय के द्वारा वे हिम के कण अदृश्य हो गये। भगवान के मन में उन हिम के कणों ने संसार के सन्ताप दूर करने के हेतु तपस्या के भाव जागृत कर दिये। हिम के छोटे छोटे कणों के क्षय के द्वारा उन्होंने विश्व व्यापी क्षणभंगुरता के अखण्ड शासन का स्वरूप समझ लिया; इसलिये शाश्वतिक शान्ति के लिये उनने राज्य परित्याग का निश्चय किया। लौकान्तिक देवों ने उनके विचारों को प्रेरणा प्रदान की। अपने पुत्र के ऊपर राज्य का भार सौंपकर वे देवनिर्मित शुक्रप्रभा पालकी पर आरूढ़ हो सहेतुक वन में पहुँचे। वहां माघ कृष्णा द्वादशी के दिन अपराह्न समय में पूर्वाषाढ़ नक्षत्र के होते हुये एक हजार राजाओं के साथ उनने दिगम्बर दीक्षा ली। तीसरे दिन उन्हें आहार देने का सौभाग्य राजा पुनर्वसु को अरिष्ट नगरी में प्राप्त हुआ। कवि वृन्दावन जी लिखते हैं—

श्री माघ की द्वादशि श्याम जानों, वैराग्य पायो भवभाव हानों।
ध्यायो चिदानन्द निवार मोहा, चर्चो सदा चर्न निवारि कोहा॥

इनका छद्मस्थ काल तीन वर्ष था। इन्होंने पौष वदी चौदस को अपराह्न में पूर्वासाढ़ नक्षत्र के होते हुये सहेतुक वन में सर्वज्ञता

की अपूर्व निधि प्राप्त की। इनके इक्यासी गणधर थे। आर्यिकाओं की संख्या तीन लाख अस्सी हजार थी। श्रावक दो लाख और श्राविकायें चार लाख थीं। यक्ष का नाम तिलोयपण्णत्ति में ब्रह्मेश्वर और यक्षि का ज्वाला मालिनी कहा गया है। अन्यत्र ज्वाला मालिनी चन्द्र प्रभु भगवान की शासन देवी कही गई है। इनका अशोक वृक्ष धूली (मालिवृक्ष) था। इनके समवसरण में सात हजार केवली, १४०० श्रुतकेवली, ५९२०० उपाध्याय, अवधिज्ञानी ७२००, विक्रियाऋद्धिधारी १२०००, ७५०० मनः पर्यय ज्ञानी, ५७०० वादी मुनि सब मिलाकर एक लक्ष मुनि थे। इनके द्वारा जीवों का अकथनीय कल्याण हुआ। इनकी पूजा में प्रभु के समवशरण के द्वादश विभागों का इस प्रकार वर्णन लिखा है।

जय शीतल नाथ जिनन्द वर भवदाघ दवानल मेघझरं।
वृषवारिद वृष्टन सृष्टि हितू परदृष्टि विनाशन सुष्टु पितू॥
समवस्रत संजुत राजतु हो, उपमा अभिराम विराजतु हो।
वर बारह भेद समाथित को, तित धर्म बखानि कियो हित को॥
पहिले में श्री गनराज रजैं, दुतिये में कल्पसुरी जु सजैं।
त्रितिये गगनी गुन भूरि धरैं, चवथे तिय जोतिष जोति भरैं॥
तिय वितंरनी पन में गनिये, छह में भुवनेसुर भी भनिये।
भुवनेश दशों थित सत्तम हैं, वसु में वसु वितर उत्तम हैं॥
नव में नभजोतिष पंच भरे, दश में दिविदेव समस्त खरे।
नरवृन्द इकादश में निवसैं, अरु बारह में पशु सर्व लखें॥
तजि वैर प्रमोद धरैं सब ही, समतारस मग्न लसैं तब ही।
सब के हित तत्व बखान करैं, करुना मन रंजित शर्म भरैं॥

आयु के अन्त में वे एक हजार मुनियों सहित शिखरजी पहुँचे और कार्तिक शुक्ला पंचमी के पूर्वाह्न समय में सम्मेद शिखर से एक हजार मुनियों सहित मोक्ष गये। (तिलोयपण्णत्ति)। उत्तरपुराण में आश्विन सुदी अष्टमी को निर्वा काल कहा है। वृन्दावन जी ने लिखा है—

कुंवार की आठयँ शुद्ध वृद्धा, भये महा मोक्ष- सरूप शुद्धा।
सम्मेदतैं शीतलनाथ स्वामी, गुनाकरं तासु पदं नमामी ॥

स्वामी समंतभद्र रचित प्रभु की स्तुति बड़ी भाव पूर्ण और मधुर है। वे कहते हैं ! "हे जिनेंद्र ! जिस प्रकार समता रूपी जल पूर्ण आपकी निर्दोष वाणी रूपी किरणें ज्ञानी जीवों को शीतलता प्रदान करती हैं, वैसी सामर्थ्य चंदन तथा चंद्र की किरणों में भी नहीं है। वह शीतलता गंगाके जलमें अथवा मुक्ताओं की मालाओं में भी नहीं है।

"जिस प्रकार वैद्य विष के संताप से पीड़ित अपने शरीर को मंत्र के द्वारा निर्विष बनाता है, उसी प्रकार आपने सांसारिक सुखों की अभिलाषा रूप अग्नि के दाह से मूर्च्छित अपने मन को ज्ञानमय अमृत जल के द्वारा शांत किया है।"

"सम्पूर्ण जगत अपनी आजीविका और विषय सुख की तृष्णा के आधीन हो दिन भर परिश्रम से पीड़ित होकर रात्रि के समय निद्रा लेता है; किन्तु हे आर्य ! आप दिन और रात्रि को भी प्रमाद रहित हो आत्मा की विशुद्धि के मार्ग में जागृत रहते हैं।"

"कोई कोई तपस्वी पुत्र, धन तथा परलोक की आकांक्षा से यज्ञादि कर्म करते हैं, किन्तु आपने शांत परिणति को धारणकर जन्म-जरा के क्षय निमित्त अशुभ मन, वचन, काय रूप प्रवृत्ति का निरोध किया है।"

"जिनेश ! उत्तम ज्ञान-ज्योति अलंकृत, संसार परिभ्रमण से अतीत तथा सुखी आप कहां, तथा अल्प ज्ञान से गर्वित होने के कारण संसार के क्लेश में निमग्न अन्य कहाँ ? इसलिये हे शीतलनाथ प्रभु ! अपने निर्वाण की भावना में तत्पर गणधर-देवादि महान् ज्ञानीयों आपका स्तवन करते है।" (४६–५०)

अनंतनाथ भगवान

इसके अनंतर अनंतनाथ भगवान की स्वयंभूकूटटोंक मिलती है। इनने अपने पुण्य जन्म द्वारा इक्ष्वाकुवंशी अयोध्यापति महाराज सिंहसेन तथा माता सर्वयशा को ज्येष्ठ वदी द्वादशी के दिन हर्षित किया

था। उस समय रेवती नक्षत्र था। उत्तर पुराण में माता का नाम जयश्यामा कहा गया है।

एक दिन उल्कापात देख ये संसार, शरीर तथा भोगों से उदास हो गए। इनने अनंत संसार के परिभ्रमण को छुड़ाकर अनंत सुख प्रदान करने वाली जैनेश्वरी दीक्षा लेने का विचार किया। सागरदत्ता पालकी पर आरुढ़ हो ये प्रभु सहेतुक वन में पहुँचे। वहाँ ज्येष्ठ वदी द्वादशी को इनने एक हजार राजाओं के साथ रेवती नक्षत्र में जिन दीक्षा धारण की। एक उपवास के पश्चात् इनने साकेत के राजा विशाख के यहाँ आहार ग्रहण किया।

इनका छद्मस्थ काल दो वर्ष था। घातिया कर्मों का नाश कर चैत्र मास की अमावस्या के अपराह्न में रेवती नक्षत्र के होते हुए सहेतुक वन में इन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। इनका कैवल्य पीपल के वृक्ष के नीचे हुआ था। वृन्दाबन जी कहते हैं :—

असित चैत अमावस को सही, परम केवल ज्ञान जग्यो कही।
लहि समोसृत धर्म धुरंधरो, हम समर्चत विघ्न सबै हरो॥

इनके पचास गणधर थे, जिनमें 'अरिष्ट' गणधर मुख्य थे। आर्यिकायें एक लाख साठ हजार थीं। मुख्य गणिनी सर्वश्री थीं। श्रावक दो लाख और ४ लाख श्राविकाएं थीं। समवशरण में ५ हजार केवली, एक हजार श्रुतकेवली, बत्तीस सौ वादी मुनि, उपाध्याय ३९५००, अवधिज्ञानी ४३००, मनःपर्ययज्ञानी ५ हजार थे। आठ हजार विक्रिया ऋद्धि वाले थे। कुल संख्या ६६ हजार थी। इनके यक्ष का नाम किन्नर और यक्षी का वैरोटी था।

अपने विहार द्वारा धर्मामृत की वर्षा कर ये प्रभु आयु के एक माह शेष रहने पर सम्मेदाचल आए और चैत्र कृष्णा अमावस्या को सवेरे छह हजार एक सौ मुनियों के साथ मुक्ति मन्दिर में पधारे। *

---

* वृन्दावन जी की पूजा में चैत्रवदी चौथ को मोक्ष लिखा है :—

असित चैत्र चतुर तिथि गाइयो, अघत घाति हनै शिव पाइयो।
गिरि समेद जजें हरि आयकें, हम जजें पद प्रीति लगायकें॥

भगवान् अनंतनाथ के स्तवन में समंतभद्र स्वामी लिखते हैं:—
"हे जिनेश ! आपका अनंतजित् (अनंतनाथ) यह नाम सार्थक है, कारण आपने जीवादि तत्व रुचि विषयक प्रसन्नता—निर्मलता के द्वारा अनंत दोष, रागादिक की निवास भूमि और धन कुटुंब आदि में ममत्व उत्पन्न करने वाले तथा अंतःकरण में चिरकाल से निवास करने वाले मोह पिशाच को जीता है।

हे सर्वज्ञ ! आपने आत्मा में विकार उत्पन्न करने वाले कषाय रूपी दुष्टों का विनाश किया और संताप उत्पन्न करने वाले काम भाव का अहंकार रोग समाधिरूप औषधि के प्रभाव से दूर किया।

हे आर्य ! परिश्रम रूप जल से पूर्ण, भय रूपी लहरों से भरी हुई विषय-तृष्णा रूपी सरिता को आपने अपरिग्रह रूप तीक्ष्ण सूर्य-किरण से सुखा दिया, इसलिए आपका आत्म तेज उत्कृष्ट है।

प्रभो ! आपकी चेष्टा अद्भुत है। आपके प्रति मित्र भाव धारण करने वाला लक्ष्मीपति बनता है और आपसे द्वेष करने वाला (व्याकरण शास्त्र प्रसिद्ध) प्रत्यय के समान प्रलय को प्राप्त होता है; किन्तु आप प्रेम तथा द्वेष करने वालों के प्रति राग तथा द्वेष का त्यागकर उदासीनता की पराकाष्ठा युक्त रहते हैं।

हे महामुने ! आप इस प्रकार हैं, आप उस प्रकार हैं, ऐसा मुझ अल्पज्ञ का प्रलाप मात्र है; क्योंकि मैं आपके पूर्ण माहात्म्य का प्रतिपादन करने में असमर्थ हूँ। मेरा प्रलाप मोक्ष प्राप्ति करने में निमित्त रूप है; जिस प्रकार अमृतमय समुद्र का स्वरूप निरूपण न करने वाला भी व्यक्ति उसके सम्यक् स्पर्श द्वारा शांति को प्राप्त करता है। (६६-७०)
आचार्य गुणभद्र कहते हैं:—

अनंतोनंतदोषाणां हंतानंतगुणाकरः ।
हंत्वंतर्ध्वान्तिसंतान-मंतातीतं जिनः स नः ॥

अनंतानंत दोषों का नाश करने वाले और अनंतगुणों को धारण करने वाले अनंतनाथ भगवान् हमारे हृदय में निवास करने वाले अ धकार की संतान को नष्ट करें।

संभवनाथ भगवान

आगे बढ़ने पर भगवान सम्भवनाथ के निर्वाणस्थल धवल-कूट के दर्शन होते हैं। सम्भव भगवान् प्रथम ग्रैवेयक के सुदर्शन विमान से चयकर श्रावस्ती नगरी के नरपति इक्ष्वाकुवंशी जितारि महाराज की महारानी सुषेणा के उदर से मगसिर मास की पूर्णिमा के दिन ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न हुए थे। इनके जन्म द्वारा जगत् में अपूर्व शान्ति छा गई थी। बड़े सुख के साथ इनका और प्रजा का काल व्यतीत हो रहा था, कि इनकी दृष्टि गगन मंडल पर पड़ी। एक सुन्दर मेघ नयन-गोचर हुआ और तत्काल देखते देखते ही वह अदृश्य हो गया। इस दृश्य ने भगवान् के मन में गंभीर विचार उत्पन्न कर दिये। उन्हें संसार के भोग-वैभव, जीवन आदि सभी सामग्री उस मेघ के समान पल भर में विलुप्त हो जाने वाली भासने लगी। इस अवसर पर लोकांतिक देवों ने आकर उनके वैराग्य को अचल कर दिया। वे सिद्धार्थ नाम की पालकी पर आरूढ़ होकर नगर के निकट वर्ती सहेतुक वन में गये। वहाँ एक हजार राजाओं के साथ मगसिर सुदी पूर्णिमा के तृतीय पहर में उन्होंने दिगम्बर मुद्रा धारण की।

एक दिन के पश्चात् राजा सुरेन्द्रदत्त ने उन्हें क्षीरान्न का आहार विधिपूर्वक दिया। चतुर्दश वर्ष प्रमाण तपस्या द्वारा उनने घातिया कर्मों का क्षय करके कार्तिक वदी पंचमी के अपराह्न काल में ज्येष्ठा नक्षत्र के रहते हुये कैवल्य प्राप्त किया। उत्तरपुराणमें कहा है; भगवान् के एक सौ पाँच गणधरों में चारूषेण स्वामी मुख्य थे। तीन लाख बीस हजार आर्यिका थीं। उनमें मुख्य धर्मार्या थी। श्रावक तीन लाख, श्राविकायें पाँच लाख थीं। इनके समवसरण में पन्द्रह हजार केवली, २१५० श्रुतकेवली, उपाध्याय १२९३००, अवधिज्ञानी ९६००, विक्रिया ऋद्धि वाले १९८००, मनःपर्ययवाले १२१५०, वादी मुनी बारह हजार थे। इनके यक्ष का नाम त्रिमुख और यक्षी का प्रज्ञप्ति था। अगणित भव्यात्माओं का उद्धार करते हुए ये महाप्रभु शिखरजी के शिखर पर विराज मान हुये, जब इनकी आयु एक माह प्रमाण रह गई थी। शुक्लध्यान के प्रभाव से चैत्र सुदी षष्ठी के दिन सूर्यास्त के समय में एक हजार मुनियों के साथ प्रभु ने शिवपुरी को प्रस्थान किया। वृन्दावनजी लिखते हैं :—

चैत शुक्ल तिथि षष्ठी घोख। गिर समेद तैं लीनों मोख।
चारशतक धनु अवगाहना। जजों तासपद थुतिकर धना॥

सम्भवनाथ की आराधना के विषय में कवि के ये शब्द मधुर लगते हैं।

शम्भवजिन के चरण चरचतें, सब आकुलता मिट जावैं।
निजनिधि ज्ञानदरश सुख वीरज, निरावाध भविजन पावै॥

स्वामी समन्तभद्र ने लिखा है, "हे सम्भवनाथ भगवान्! जिस प्रकार अनाथ के रोग निवारण के लिये कोई वैद्य प्रयत्न करता है, उसी प्रकार आप लोक में संसार सम्बन्धी तृष्णा रोग के द्वारा पीड़ित प्राणियों की वेदना निवारण करने के लिये आकस्मिक वैद्य के समान हैं।

प्रभो, यह जगत अनित्य है। इसमें कोई शरणरूप नहीं है और यह अहंकार संयुक्त—विपरीत अभिनिवेश रूप दोषयुक्त है; इसलिये जन्म, जरा और मृत्यु से दुखी जगत् को आपने निर्मल शान्ति प्रदान की।

आपने जगत् के प्राणियों को इस प्रकार का उपदेश दिया कि इन्द्रियजन्य सुख बिजली की चमक समान चंचल है। वह संसार सुख की तृष्णारूपी रोग को बढ़ाने वाला है। इस तृष्णा की भी वृद्धि सदा जीव को सन्ताप प्रदान करती है और उस सन्ताप के कारण यह जीव सेवा आदि में प्रवृत्ति कर अनेक प्रकार के क्लेश प्राप्त करता है।

हे नाथ! बन्ध मोक्ष, उन दोनों के कारण बद्ध-मुक्त, मोक्ष का फल यह सर्व कथन स्याद्वाद का अवलम्बन करने वाले आपके यहाँ ही निर्दोष बनता है। एकान्त मतवालों के यहाँ वे तत्व नहीं बनते; इसलिये आपही तत्व के उपदेष्टा हैं।

हे आर्य! निर्मल कीर्ति वाले आपका स्तवन करने में तत्पर इन्द्रराज भी जब असमर्थ हो गये; तो मुझ अलपज्ञ की क्या कथा? फिर भी प्रभो! भक्ति पूर्वक आपके चरण कमलों की स्तुति करने वाले मुझे महान् सौख्य परम्परा अर्थात् निर्वाण का आनन्द प्रदान कीजिये (११-१५)।

वासुपूज्य भगवान

इसके अनन्तर भगवान वासुपूज्य स्वामी की टोंक आती है। उनका निर्वाण चम्पापुरी से हुआ था। इनने अपने जन्म द्वारा चम्पानगरी को फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी के दिन पवित्र किया था। पिता महाराज वसुपूज्य थे। माता जयावती थी। इन्होंने बाल्य जीवन से ही विषयों की ओर से विरक्ति धारण की थी। पंचबाल यति तीर्थंकरों में इनका प्रथम स्थान है। कवि वृन्दावन इनकी स्तुति में लिखते हैं।

वासुपूज्य वसुपूज तनुजपद, वासव सेवत आई।
बाल ब्रह्मचारी लखि जिनको, शिवतिय सनमुखधाई॥

पूर्वभव के स्मरण से इनका मन तपोवन जाने को उत्कंठित हुआ इसलिये ये बालयति तीर्थंकर फाल्गुन वदी चौदस को मनोहर नाम के वन में गये और विशाखा नक्षत्र में इन्होंने मुनि दीक्षा ली। एक वर्ष पर्यन्त तपस्या के पश्चात् इन्होंने माघ शुक्ला द्वितीया को अपराह्न में मनोहर वन में केवल ज्ञान प्राप्त किये। इनके समवसरण में ६६ गणधर थे। मुख्य गणधर का नाम धर्म था। ७२००० मुनि समवसरण में थे। एक लाख छह हजार आर्यिकायें थीं; उनमें वरषेणा प्रधान थीं। दो लाख श्रावक, चार लाख श्राविका थीं। इनके केवल ज्ञान का वृक्ष तेंदू का था। यक्षी का नाम गौरी और यक्ष सन्मुख था। फाल्गुन वदी पंचमी के अपराह्न काल में इनने ६०१ मुनियों सहित चम्पापुर से मोक्ष प्राप्त किया था। (४-११६६ ति. प.) उत्तर पुराण में भादों सुदी चतुर्दशी को मंदारगिरि से निर्वाण बताया है। वृन्दावन जी लिखते हैं।

सित भादव चौदसि लीनों, निरवाण सुथान प्रवीनों।
पुर चंपाथानक सेती। हम पूजत निजहित हेती॥

स्वामी समन्तभद्र ने लिखा है हे प्रभो! आप कल्याणकारी स्वर्गावतरणादि कल्याणकों से पूज्यनीय रहे हैं। आप देवेन्द्र चक्रवर्ती आदि के द्वारा पूज्य हैं। हे मुनींद्र! आप मुझ अल्पज्ञ के द्वारा भी पूज्य हैं। क्या दीप शिखा द्वारा तेजोनिधि सूर्य पूजनीय नहीं होता?

यहां संक्षेप प्रभु के सम्बन्ध में प्रकाश डालने का प्रयास किया है, जिससे पूजक उनकी पावन स्मृति को प्रबुद्ध करे। गुणभद्र आचार्य कहते हैं।

वासो रिन्द्रस्य पूज्योयं वसुपूज्यस्य वा सुतः।
वासुपूज्यः सतां पूज्यः ज्ञानेन पुनातु नः ॥

जो वसु अर्थात् सुरेन्द्र द्वारा पूज्य हैं, जो वासुपूज्य राजा के पुत्र हैं, तथा जो सत्पुरुषों के द्वारा पूज्य हैं, वे वासुपूज्य भगवान् अपने ज्ञान द्वारा हमें पवित्र करें।

अभिनंदननाथ भगवान्

इसके अनन्तर अभिनन्दननाथ भगवान के निर्वाण का आनन्द कूट मिलता है। इनका जन्म अयोध्या पुरी में स्वयंवर महाराज के यहां माता सिद्धार्था के गर्भ से माघ सुदी द्वादशी में पुनर्वसु नक्षत्र के रहते हुये हुआ था। ये विजय नाम के अनुत्तर विमान से चयकर आये थे। वृन्दावन जी लिखते हैं।

माघ शुक्ल तिथि द्वादशि के दिन, तीन लोक हितकार।
अभिनन्दन आनन्दकंद तुम, लीनों जग अवतार ॥
एक मुहूरत नरक मांहि हू पायो सब जिय चैन।
कनक वरन, कपि चिह्नधरन पद जजों तुमैं दिनरैन ॥

एक दिन वे अपने महल पर बैठे हुये आकाश की सुन्दरता देख रहे थे। अकस्मात् मेघों ने एक अनुपम सुन्दर नगर का रूप धारण किया। उस गन्धर्व नगर के सौन्दर्य को वे देख ही रहे थे, कि इतने में प्रचन्ड पवन के वेग से वह खेल समाप्त हो गया। इस घटना से उनके अन्तःकरण में वैराग्य की उज्ज्वल ज्योति जागी।

उन्होंने हस्तचित्रा पालकी पर आरूढ़ हो माघ सुदी द्वादशी को पूर्वाह्न काल में पुनर्वसु नक्षत्र के रहते हुये उग्र नाम के वन में दिगम्बर दीक्षा धारण की। उनके साथ एक हजार राजाओं ने दीक्षा ली थी। तीसरे दिन अयोध्या पुरी में महाराज इन्द्रदत्त के यहां उनका आहार हुआ। १८ वर्ष पर्यन्त उनने तपश्चर्या की और पौष

शुक्ला चौदस को संध्यासमय पुनर्वसु नक्षत्र के रहते हुये केवलज्ञान प्राप्त हुआ। समवसरण में १०३ गणधर थे। उनमें मुख्य का नाम व्रजनाभि था। उनका नाम वज्रचमर भी लिखा है। ३३०६०० आर्यिकायें थीं। उनमें मेरुषेणा प्रधान थी। तीन लाख श्रावक और पांच लाख श्राविका थीं। केवलज्ञान वेशालि वृक्ष के नीचे हुआ था। यक्षी वज्रश्रृंखला थी। यक्ष का नाम यक्षेश्वर था। उनके समवसरण में तीन लाख मुनिराज थे, जिनमें १६००० केवली, २५०० श्रुत केवली, उपाध्याय २३००५०, अवधिज्ञानी ९८००, विक्रिया ऋद्धि वाले १९०००, विपुलमति वाले ११६५० और वादी मुनि ग्यारह हजार थे। तिलोयपण्णत्ति में लिखा है, कि भगवान् ने वैसाख सुदी सप्तमी को पूर्वाह्न के समय एक हजार मुनियों के साथ मोक्ष को प्राप्त किया था। उत्तरपुराण में वैसाख सुदी को मोक्ष कहा है। वृन्दावन पूजन में लिखा है।

> जोग निरोध अघाति घाती लहि गिर समेदतैं मोख।
> मास सकल सुखरास कहे वैशाख शुकल छठ चोख॥

इनके स्तवन में समन्तभद्र स्वामी कहते हैं :—

हे जिनेन्द्र ! आप अन्तरंग ज्ञानादि गुणों की सर्वाङ्गीण वृद्धि होने के कारण तथा लौकिक विपुल लक्ष्मी की अभिवृद्धि होने के कारण यथार्थ में अभिनंदन हैं। आपके जन्म लेते ही संपूर्ण प्राणियों के ज्ञान और संपत्ति की वृद्धि हुई थी। प्रभो ! आपने क्षमा-सखी संयुक्त दया को वधू रूप में ग्रहण किया। अपने धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान रूप समाधि को धारण किया तथा इसीकी सिद्धि के हेतु बाह्य और अभ्यन्तर निर्ग्रन्थ वृत्ति धारण की।

आपने अचेतन शरीर और उसके कारण पुत्र, स्त्री आदि से संबंध उत्पन्न करने वाली सामग्री में ममकार भाव धारण करने के कारण विनाश को प्राप्त जगत् के जीवों को, जो अनित्य पदार्थों में अविनाशी बुद्धि धारण किए हुए है, वस्तु का वास्तविक स्वरूप समझाया। क्षुधा तृषा आदि की पीड़ा को भोजनादि के द्वारा उपशांत करने से सदा तृप्ति नहीं होती; कारण इंद्रिय और विषयों से उत्पन्न सुख अल्प प्रमाण में पाया जाता है। इसलिए क्षुधादि के प्रतीकार

करने में शरीर और आत्मा का वास्तविक हित नहीं है। हे अभिनंदन भगवान्! आपने अपनी वाणी के द्वारा यह तत्व बताया।

अत्यंत विषयासक्त जीव ऐहिक और पारलौकिक दोषों के कारण भीतिवश पाप कार्यों में प्रवृत्ति नहीं करता है, तब इस लोक में और परलोक में विषया सक्ति के कुपरिणामों को जानने वाला भला कैसे इंद्रिय जनित सुखों में संलग्न होगा ? यह बात आपने कहीं।

वह विपयासक्ति इस भोग लोलुपी जीव को क्लेशप्रद होती है। उसके द्वारा विषयों की लालसा की अभिवृद्धि होती है और सुख पूर्वक जीव की स्थिति नहीं होती है। प्रभो! इस प्रकार संपूर्ण प्राणियों का कल्याण प्रदान करने वाला आपका मत है; अतएव आप सत्पुरुषों के शरण रूप माने गए हैं। (१६-२०)

आचार्य गुणभद्र कहते हैं :—

अर्थे सत्ये वचः सत्यं सद्वक्तु र्वक्ति सत्यताम् ।
यस्यासौ पातु वंदारु न्नंदयन्नभिनंदनः ॥

पदार्थों का वास्तविक स्वरूप ज्ञात होने से जिनकी वाणी की सत्यता प्रगट होती है और वे सत्य वचन ही जिनके यथार्थ वक्तृत्व को प्रगट करते हैं, वे अभिनन्दन भगवान् वंदकों को आनंद देते हुए हमारी रक्षा करें।

भगवान धर्मनाथ

इसके अनन्तर भगवान धर्मनाथ की टोंक प्राप्त होती है। उनने पुष्य नक्षत्र में माघ सुदी त्रयोदशी को रत्नपुर में भानु नरेन्द्र और माता सुव्रता को अपने जन्म द्वारा कृतार्थ किया था। ये कुरुवंशी थे। ये सर्वार्थसिद्धि से चयकर रत्नपुर में आये थे। सर्वार्थसिद्धि में रहने वाले देव एक भव धारण कर मोक्ष जाते हैं। इनका जीवन विलक्षण विशुद्धता अलंकृत रहा। राज्य वैभव के मध्य रहते हुए भी सरोवर से सरोज की भांति आसक्ति विहीन इनका पावन जीवन था। एक दिन रात के समय उन्होंने उल्कापात देखा। इससे उनके अन्तःकरण में यह विचार उत्पन्न हुआ

कि क्षण में विनष्ट होने वाले इस उल्का के समान सभी वस्तुओं का अल्प काल में विलय हो जायगा। इस प्रकार के विचार उठे। लौकांतिकों का समर्थन पा वे सुदृढ़ बन गये। उन्होंने सुधर्म नाम के पुत्र को राज्य देकर देव निर्मित नागदत्ता पालकी पर आरूढ़ हो, शालिवन में जाकर भादों सुदी १३ को अपराह्न में पुष्य नक्षत्र में १००० राजाओं के साथ दिगंबर मुद्रा धारण की। भगवान् ने तीसरे दिन पाटलीपुत्र के नरेश महाराज धन्यसेन के यहाँ आहार ग्रहण किया। उत्तर पुराण में इनकी दीक्षा माघ सुदी १३ को लिखी है।

एक वर्ष तक इन्होंने महान तपस्या कर कर्मों की निर्जरा की। पौष की पूर्णिमा को अपराह्न काल में पुष्य नक्षत्र के होते हुए सहेतुक वन में दधिपर्ण वृक्ष के नीचे इन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। उत्तर पुराण में सप्तच्छद वृक्ष का उल्लेख आया है। इनके समवशरण में ४३ गणधर थे; मुख्य अरिष्टसेन थे। आर्यिका बासठ हजार चार सौ थीं; प्रमुख सुव्रता थीं। समवशरण में दो लाख श्रावक और ४ लाख श्राविका थीं। इनके यक्ष का नाम किंपुरुष और यक्षी का सोलसा अनन्तमती था। समवशरण के साधुओं की संख्या चौसठ हजार लिखी है। उनमें ४५०० केवली, ९०० श्रुतकेवली, ३६०० अवधिज्ञानी, ४५०० मनःपर्ययज्ञान वाले, विक्रिया ऋद्धि वाले ७०००, उपाध्याय ४०,७०० एवं वादि मुनि २८०० थे।

भगवान् ने जेठ वदी १४ को प्रदोष समय में ८०१ मुनियों के साथ सम्मेद शिखर से मोक्ष प्राप्त किया। उत्तर पुराण में जेठ सुदी चतुर्थी लिखा है। वृन्दावन ने कहा है :—

जेठ शुक्ल तिथि चौथ की हो, शिव समेदतें पाय।
जगत पूज पद पूजों, पूजों हो अबार॥
धरम जिनेसुर पूजों।

स्वामी समन्तभद्र ने अपने मार्मिक स्तवन में लिखा है—

भगवन्! आपने अकलंक धर्मतीर्थ का प्रवर्तन किया, इसलिए महान् आत्मायें आपको 'धर्म' इस नाम से मानती हैं। आपने कर्म-रूपी भीषण वन को तपस्या रूपी अग्नि के द्वारा दग्ध किया और

अविनाशी आनन्द को प्राप्त किया, इसलिये आप विद्वानों के द्वारा शंकर भी माने गये हैं।

हे देव! सुर और मानव समुदाय में श्रेष्ठ ज्ञानीजनों से आप परिवेष्टित होते हुए इस प्रकार शोभायमान होते हैं, जिस प्रकार आकाश में अमल पूर्ण चन्द्र तारिकाओं से शोभित होता है।

समवशरण में आप सिंहासन आदि प्रातिहार्यों के वैभव से अलंकृत हैं, किन्तु आप अपने शरीर से भी ममत्व रहित हैं। आपने मनुष्यों और देवताओं को निर्वाण का मार्ग बताया, किन्तु अपने शासन के फल सम्बन्धी इच्छा की व्यथा आपको पीड़ित नहीं करती।

जिनेश! आपकी शारीरिक, वाचिक और अन्तःकरण की प्रवृत्ति इच्छा पूर्वक नहीं होती। आपकी प्रवृत्तियां अविचार पूर्ण भी नहीं है। हे धीर! आपके कार्य अचिन्त्य हैं।

हे देवाधिदेव! आपने मानव स्वभाव सम्बन्धी असमर्थताओं का अतिक्रमण किया है। आप देवताओं के भी देवता-देवाधिदेव रूप में पूज्य हैं, इसलिये आप परमदेव हैं। हे धर्म जिन! हम पर प्रसन्न होकर मोक्ष रूप कल्याण प्रदान कीजिए।

—(७१-७५)

आचार्य गुणभद्र ने लिखा है—

धर्मे यस्मिन् समुद्भूता धर्मा दश सुनिर्मलाः।
स धर्मः शर्म ये दद्यात् अधर्म-मपहृत्य नः॥

जिन धर्मनाथ के उत्पन्न होने से दश धर्म प्रकाशित हुए थे, वे धर्मनाथ भगवान् हमारे अधर्म का नाश कर हमें कल्याण देवें।

सुमतिनाथ भगवान्

इसके पश्चात् भगवान् सुमतिनाथ का 'अविचल-कूट' आता है। इनने वैजयन्त नाम के अनुत्तर विमान से चयकर साकेतपुरी के राजा मेघरथ महाराज के यहां महारानी मंगला के गर्भ से श्रावण सुदी एकादशी को मघा नक्षत्र में जन्म धारण किया था। उत्तरपुराण में चैत सुदी एकादशी को जन्म लिखा है। वृन्दावन जी ने लिखा है—

संजम रतन विभूषन भूपित दूपन दूपत श्रीजिन चन्द ।
सुमति रमा रंजन भवभंजन संजयन्त तजि मेरुनरिन्द्र ॥
मातु मंगला सकल मंगला नगर विनीता जये अमंद ।
सो प्रभु दया सुधारसगर्भित आय तिष्ठ इत हरि सुखदन्द ॥

पुण्योदय से प्राप्त अचिन्त्य वैभव का ये उपभोग कर रहे थे, कि एक दिन अकस्मात् उनकी दृष्टि व्यतीत हुये अतीत जीवन और जन्मान्तर की ओर गई। उन्हें आश्चर्य हुआ कि उनने जीवन के वहुमूल्य क्षण किस प्रकार सारशून्य विषय सुखों की समाराधना में व्यतीत कर दिये ? इसलिये उनने संसार के समस्त भोगों का त्यागकर आत्मा के कल्याण की ओर प्रवृत्ति करने का निश्चय किया।

उन्होंने अभया नाम की पालकी पर विराजमान होकर अयोध्या के समीपवर्ती सहेतुक वन की ओर प्रस्थान किया और एक हजार राजाओं के साथ वैसाख सुदी नवमी को मघा नक्षत्र में पूर्वाह्न में दीक्षा ली।

बीस वर्ष तक घोर तप करके इन्होंने ४ घातिया कर्मों का नाश किया और चैत्र सुदी ११ के अपराह्न काल में मघा नक्षत्र के होते हुये सहेतुक वन में केवलज्ञान प्राप्त किया। इनके ११६ गणधर थे। उनमें अमर नाम के गणधर प्रधान थे। आर्यिका तीन लाख तीस हजार थीं। मुख्य का नाम अनन्तमती था। तीन लाख श्रावक और पाँच लाख श्राविका थीं। यक्षी का नाम वज्रांकुशा और यक्ष का तुंवुरु था। इनके समवसरण में तीन लाख बीस हजार मुनी थे। केवली १३०००, श्रुत केवली २४०० अवधिज्ञानी ११००० उपाध्याय २५४३५०, विक्रियाऋद्धि वाले १८४००, विपुलमति वाले १०४०० तथा वादी मुनी १०४५० थे। उनके द्वारा विश्व में सुमति का शासन सर्वत्र स्थापित हुआ था। उनके उपदेश को सुनने से अनन्त संसार में रुलाने वाला मिथ्या भाव सहज ही दूर होता था। उनका ध्यान करने से सर्व प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं।

कवि वृन्दावन जी ने लिखा है —

सुमति तीन सौ छत्तिसो, सुमति भेद दरसाय।
सुमति देहु विनती करों, सुमति विलम्ब कराय॥

दयावेलि तरु सुगुननिधि, भविक मोद गन चंद।
सुमति सतीपति सुमतिकों, ध्यावों धरि आनन्द॥

जब उनकी आयु एक माह शेष रही तब वे सम्मेदशिखर आये। वहां उन्होंने शेष चार अघातिया कर्मों का एक हजार मुनियों के साथ चैत सुदी दशमी के दिन पूर्वाह्न में नाश किया। उत्तरपुराण में मोक्षकाल चैत सुदी एकादशी सन्ध्या के समय लिखा है।

कवि वृन्दावन जी लिखते हैं—

चैत सुकलग्यारस निरबानं, गिरि समेदतैं त्रिभुवनमानं।
गुन अनन्त निज निरमलधारी, जजौं देव सुधि लेहु हमारी॥

देवों ने सम्मेद शिखर पर आकर मोक्ष कल्याणक की पूजा की।

स्वामी समन्तभद्र प्रभु की स्तुति में लिखते हैं "हे भगवान्! आपका सुमतिनाथ नाम सार्थक है। 'शोभना मतिर्यस्यासौ सुमतिः' शोभायमान है बुद्धि जिनकी वे सुमति है, क्योंकि जो तत्व आपको है मान्य है, वह सुयुक्ति समर्थित है और अन्य एकान्तमतों में सम्पूर्ण क्रिया, कारक तथा उनका स्वरूप सिद्ध नहीं होता। (२१)

स्वरूप आदि चतुष्टय की अपेक्षा आत्मादि तत्व रूप सत् रूप हैं। और वे पर रूप की अपेक्षा कथंचित् असत् हैं। पुष्प का आकाश में अभाव है किन्तु उसका वृक्षों में सद्भाव है। आपके मत की अपेक्षा अन्य एकान्त वादियों का कथन सम्पूर्ण स्वभावों से शून्य, स्ववचन विरुद्ध तथा अप्रमाण है। (२३)

वस्तु सर्वथा नित्य नहीं है, कारण ऐसा मानने पर उसमें न उत्पाद होगा और न विनाश। उसमें क्रिया और कारक का प्रयोग भी संगत नहीं ठहरता। न तो सर्वथा असत् का जन्म होता है और न सत् का नाश। पुद्गल में प्रदीप पर्याय का नाश होते हुये भी वह अंधकार रूप से विद्यमान रहता है। (२४)

भगवान सुमतिनाथ का यह स्तवन यथार्थ है—

सुमति चरण जो जजै, भविक जन मन वच काई।
तासु सकल दुख दंद फंद- ततछिन छय जाई॥
पुत्र मित्र धन धान्य, शर्म अनुपम सो पावे।
वृन्दावन निर्वान, लहै जो निहचै ध्यावै॥

आचार्य गुण भद्र कहते हैं:—

लक्ष्मी रनश्वरी तेषां येषां तस्य मते मतिः।
दयादादेयवाक् सद्भिः सोऽस्मभ्यं सुमतिः मतिम् ॥

जिनकी बुद्धि सुमतिनाथ के मत में है, उनको अविनाशी लक्ष्मी प्राप्त होती है। सत् पुरुष जिनके वचनों को सदा ग्रहण योग्य मानते हैं, ऐसे सुमति जिनेश हमें सुमति प्रदान करें।

भगवान शांतिनाथ

इसके अनन्तर भगवान शान्तिनाथ की शान्तिप्रद टोंक मिलती है। वे सवार्थसिद्धि से चयकर ज्येष्ठ कृष्ण चौदस को भरणी नक्षत्र में माता ऐरा और पिता विश्वसेन के यहाँ हस्तिनापुर नगर में उत्पन्न हुये। इनका वंश इक्ष्वाकु था। ये चक्रवर्ती, कामदेव, तीर्थंकर हुये हैं। बख्तावर कवि की पूजा में इस प्रकार पाठ पढ़ा जाता है।

शांतिनाथ पंचम चक्रेश्वर द्वादश मदन तनो पद पाय।
ताके चरण कमल के पूजें रोग, शोक, दुख, दारिद जाय ॥

भगवान् ने अपने भाई चक्रायुध के साथ प्रजा का योग्य रीति से पालन किया। कुछ समय के बाद शांतिनाथ प्रभुको चक्रवर्ती का पूर्ण वैभव अनायास ही प्राप्त हुआ। एक दिन भगवान् को पूर्वभव की स्मृति आने से वैराग्य उत्पन्न हो गया। उत्तर पुराण में लिखा है कि एक दिन वे दर्पण में अपना मुख देख रहे थे। उसमें उन्हें दो प्रतिबिम्ब मुख के दिखाई पड़े? इससे उन्हें आश्चर्य हुआ और विचार करते समय उन्हें जन्मान्तर की बातें याद आ गई। प्रभुने विचार किया "मैंने सामान्य मनुष्य के समान अपना बहुमूल्य समय निःसार भोगों आदि में व्यर्थ व्यतीत किया। अब तो मुझे मोह के बन्धन को तोड़ तत्काल आत्म हित में लगना चाहिये। उनके हृदय में वैराग्य का सागर तरंगित हो रहा था। ब्रह्मस्वर्ग के लौकांतिक देवों ने आकर उनके पुण्य निश्चय को प्रेरणा प्रदान की। वे सर्वार्थसिद्धि नाम की पालकी पर आरूढ़ हो ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्थी को अपराह्नकाल में भरणी नक्षत्र में होते हुये आम्र वन में गये और एक हजार राजाओं के साथ मुनि दीक्षा ली।

उनका आहार मन्दरपुर के राजा सुमित्र के यहाँ हुआ था। इन सोलहवें तीर्थंकर ने सोलह वर्ष तपस्या द्वारा चार घातिया कर्मों को नष्ट कर पौष सुदी एकादशी के दिन आम्रवन में नंदी वृक्ष के नीचे भरणी नक्षत्र के रहते केवलज्ञान प्राप्त किया। उत्तर पुराण में केवलज्ञान का काल पौष सुदी दशमी लिखा है।

शुकल पौष दशैं सुखराश है। परम केवल-ज्ञान प्रकाश है।
भव समुद्रउधारन देवकी। हम करें नित मंगल सेवकी॥

इनके ३६ गणधर थे। मुख्य चक्रायुध थे। वे उनके ही भाई थे, जिनने प्रभु के साथ ही दीक्षा ली थी। ऐसा अपूर्व बन्धुत्व कहाँ मिलता है? हाँ, आज के युगमें आचार्य शान्तिसागर महाराज को आचार्य रूप में और उनके ज्येष्ठ सहोदर महामुनि वर्धमान-स्वामी को उनके शिष्य के रूप में देखकर उस लोकोत्तर बात का आंशिक चित्रण मनोमन्दिर में किया जा सकता था।

प्रभु के समवशरण में आर्यिका ६०३०० थीं, जिनमें मुख्य हरिषेणा थी। दो लाख श्रावक और ४ लाख श्राविका थीं। यक्ष का नाम गरुड़ था और यक्षी का नाम मानसी था। समवशरण में चार हजार केवली, ८०० श्रुत केवली, ४१८०० उपाध्याय, अवधिज्ञानी ३०००, छह हजार विक्रिया ऋद्धि धारी, मनःपर्ययधारी ४०००, और वादी मुनि २४०० थे। सब मिलाकर ६२००० मुनि थे। भगवान् ने चक्रवर्ती के रूप में जैसे अपूर्व प्रभाव दिखाया था, इसी प्रकार धर्म-चक्रवर्ती के रूप में भी उनका अपूर्व प्रभाव दिखाई दिया।

धर्मोपदेश द्वारा संसार-ताप सन्तप्त जीवों को शान्ति लाभ देकर प्रभु सम्मेद शिखर आए और वहां से नौ हजार मुनियों के साथ ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी के दिन सायंकाल के समय मोक्ष को पधारे। देवों ने बड़ी भक्ति पूर्वक निर्वाण उत्सव मनाया। भगवान् की स्तुति में कवि भूधरदास लिखते हैं—

शान्ति जिनेश जयो जगतेश हरे अघ ताप निशेप की नाईं
सेवत पाय सुरासुर आय नमैं सिर नाय मही तल ताईं
मौलि विषैं मणि नील दिपें प्रभु के चरणो झलकैं वहु झांईं
सूंघन पाय सरोज सुगन्धि किधों चलके अलि पङ्क्ति आईं

कवि वृन्दावन लिखते हैं।

शान्तिनाथ जिनके पदपकज, जो भवि पूजैं मन-वचकाय।
जनम जनम के पातक ताके, ततछिन तजिकैं जाय पलाय ॥
मन वांछित सुख पावे सो नर बांचे भगति भाय अति लाय।
तातैं वृन्दावन नित वन्दे जातैं शिवपुर राज कराय ॥

समन्तभद्र स्वामी कहते हैं, भगवान् शान्तिनाथ जिनने अनुपम प्रताप शाली राजा के रूप में प्रजा की बहुत काल तक शत्रुओं से रक्षा की; पश्चात् उनने दया-मूर्ति मुनि के रूप में अपने दोषों का स्वयं उपशमन किया। जिनने शत्रुओं को भयजनक चक्र के द्वारा सम्पूर्ण नरेन्द्र चक्र को जीतकर चक्रवर्ती का पद प्राप्त किया, महान् उदय शाली उनने समाधि (ध्यान) चक्र के द्वारा दुर्जय मोह के चक्र को जीता।

राजाओं में सिंह तथा राजाओं के श्रेष्ठ भोगों के भोक्ता शांतिनाथ भगवान् राज्य लक्ष्मी के द्वारा नरेन्द्रमंडल में शोभायमान होते थे और अब दीक्षा लेने के अनन्तर आत्म-तन्त्र वे भगवान् अष्ट महाप्रातिहार्यादि लक्ष्मी तथा अनन्तज्ञानादि लक्ष्मी के द्वारा देव तथा मानवों आदि की विशाल सभा-समवसरण में शोभायमान हुये।

जिनके राज्यकाल में नरेन्द्र-चक्र प्रणामांजलि करता था। केवलज्ञानी मुनि होने पर दया की किरणों को धारण करने वाले उनके समक्ष धर्मचक्र उनके आधीन हुआ। समवसरण में उन पूज्य प्रभु के समक्ष देव चक्र ने नम्र होकर प्रणामांजलि की और शुक्लध्यान के उन्मुख होने पर यमराज के चक्र का विनाश किया।

जिनने अपने रागादि दोषों के क्षय द्वारा अनन्त सुख प्राप्त किया, जो शरण में आने वाले जीवों को शान्ति प्रदान करते हैं, वे शरणरूप भगवान् शान्तिनाथ जिनेन्द्र संसार के क्लेश तथा भय को दूर करें।
(७६-८०)

इनके निर्वाण स्थल को इन शब्दों में कवि वृन्दावन प्रणाम करते है।

असित चौदश जेठ हनें अरी गिरी समेदथकी शिवती वरी।
सकलइन्द्र जजैं तित आईकैं। हम जजैं इत मस्तक नाइकैं ॥

महावीर भगवान्

यहाँ से आगे जाने पर महावीर तीर्थंकर की टोंक मिलती है, जिनका निर्वाण कार्तिक कृष्णा चौदस को पावापुरी से हुआ था। उनने महाराज सिद्धार्थ और माता त्रिशला (प्रियकारिणी) को चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को अपने जन्म द्वारा कृतार्थ किया था। उनकी मनोवृत्ति प्रारंभ से ही भोगों से विमुख रहती थी। इससे उन्होंने बाल्यकाल से ही ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया था। इनका जन्मस्थल कुंडलपुर था। उनने मगसिर वदी दशमी के दिन अपराह्नकाल में उत्तरा नक्षत्र में अकेले ही नाथवन में दीक्षा ली थी। "एकच्चिय वड्ढमाण जिणो"

—(४-६६८ ति० प०)

इनकी पारणा कूलनृप के यहाँ हुई थी। इनने वैशाखशुक्ला दशमी को केवलज्ञान प्राप्त किया था। इनके एकादश गणधर थे। उनमें प्रधान इंद्रभूति गौतम थे। छत्तीसहजार आर्यिकायें थीं। चंदना मुख्य आर्यिका थीं। एक लाख श्रावक, तीन लाख आर्यिका थीं। यक्ष गुह्यक और यक्षी सिद्धायिनी थीं।

भगवान् महावीर के शरण में आगत जीव वर्धमान हो सन्मति का नायक बनता है। जैन शतक में लिखा है:—

रहो दूर अंतर की महिमा बाहिज गुण वर्णन वल कांपै।
एक हजार आठ लच्छन तन तेज कोटिरवि किरण न तापै॥
सुरपति सहस आंख अंजलिसों रुपामृत पीवत नहिं धापै।
तुम बिन कौन समर्थ वीरजिन जगसों काढि मोच्छ में थापै॥

दशभक्ति में लिखा है--जो ध्यानमय होकर, संयम तथा योग सहित हो वीर भगवान के चरणों को सदा प्रणाम करते हैं, वे वीतशोक होकर विषम संसार दुर्ग के पार पहुँच जाते हैं।"

भगवान सुपार्श्वनाथ

इसके पश्चात सुपार्श्वनाथ भगवान की प्रभास-कूट आती है। उनने काशीपति सुप्रतिष्ठ महाराज तथा माता पृथिवीषेणा को अपने जन्म द्वारा कृतार्थ किया था। ज्येष्ठ सुदी द्वादशी को विशाखा नक्षत्र में उनका जन्म हुआ था। ये मध्य ग्रैवेयक से चयकर आये थे।

इनके पुण्योदय से संपूर्ण सुख की सामग्री सुरलोक से आती थी। अवर्णनीय आनन्द से काल व्यतीत हो रहा था, कि सहसा मन में वैराग्य के भाव उत्पन्न हो गए। जिस प्रकार वासन्ती वनश्री का क्षय देखकर श्रेयांसनाथ भगवान का अन्तःकरण वैराग्य की ओर उन्मुख हुआ था, इसी प्रकार सुपार्श्वनाथ स्वामी की अवस्था हुई। उनने सोचा कि जिस प्रकार मधुमास की शोभा मन को मोहित कर विनाश को प्राप्त होती है, उसी प्रकार सभी मनोज्ञ लगने वाली इंद्रियानुकूल सामग्री भी अल्पकाल में क्षय को प्राप्त हुए विना न रहेगी। उनका हृदय वैराग्य पूर्ण हो गया। इससे देवनिर्मित 'मनोगति' पालकी पर आरुढ़ हो वे काशी के समीपवर्ती सहेतुक वन में गए और एक हजार राजाओं के साथ जिनदीक्षा धारण की। उस दिन विशाखा नक्षत्र था। तिथि ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी थी। वृन्दावन जी कहते हैं :—

जनम के तिथ श्रीधरनें धरी तप समस्त प्रमादनकों हरी।
नृप महेन्द्र दियो पय भावसों हम जजैं इत श्री पद चावसों॥

इनने शिरीष वृक्ष के नीचे फाल्गुन कृष्णा सप्तमी के अपराह्न काल में विशाखा नक्षत्र के रहते हुए सहेतुक वन में केवलज्ञान प्राप्त किया। उनका छद्मस्थ काल नौ वर्ष रहा था। उत्तरपुराण में केवल ज्ञान की तिथि फाल्गुन सुदी षष्ठी लिखी है।

भगवान के ९५ गणधर थे। मुख्य गणनायक बलदत्त थे। तीन लाख तीस हजार आर्यिका थी। मीना गणिनी मुख्य थीं। यक्ष का नाम विजय था, यक्षी का पुरुषदत्ता था। तीन लाख श्रावक, पांच लाख श्राविका थीं। समवशरण में ११ हजार केवली, २०३० श्रुत केवली, २४४·२० उपाध्याय, अवधिधारी ९ हजार, विक्रिया ऋद्धिधारी १५३००, मनःपर्ययज्ञानी ९१५० तथा वादी मुनि ८६०० थे। सब मिलाकर तीन लाख मुनिराज थे।

फागुन वदी षष्ठी को पूर्वाह्न समय में अनुराधा नक्षत्र के रहते हुए पांचसौ मुनियों के साथ इनने सम्मेदशिखर से निर्वाण प्राप्त किया। उत्तर पुराण में कहा है कि ये १००० मुनियों के साथ में फाल्गुन शुक्ला सप्तमी को मोक्ष गए।

वृन्दावनजी की पूजा में लिखा है:—

असित फागुण सातयें पावनों, सकल कर्म कियो छय भावनों।
गिरि समेद थकी शिव जातु हैं, जजत ही सब विघ्न विलातु हैं॥

सुपार्श्वनाथ भगवान के स्तवन में समन्तभद्र स्वामी ने बड़ी मार्मिक बात कही है:—

"भगवन्! जो कर्म रहित शुद्ध आत्म स्वरूप में स्थितिरूप स्वास्थ्य है, वह अविनाशी है; यही इस जीव का साध्य है। भोग साध्य नहीं है, क्योंकि वे विनाश स्वरूप वाले हैं। उन भोगों के द्वारा तृष्णा की तीव्र जागृति होती है। इससे न शारीरिक संताप शांत होता है और न मानसिक ही। यह तत्व भगवान सुपार्श्वनाथ ने कहा।

गमनशील प्राणी के द्वारा संचालित यंत्र के समान जीव के द्वारा धारण किया गया अजंगम शरीर बीभत्स है; दुर्गंधशील, विनाश युक्त है और बहुत संताप देता है; इसमें अनुराग व्यर्थ है। यह हित की बात आपने कही।

प्रभो! भवितव्यता अर्थात दैव की सामर्थ्य अलंध्य है। वह बाह्य और अभ्यंतर कारण युगल से उत्पन्न कार्य से ज्ञात होती है। यह अहंकार से पीड़ित प्राणी सहकारी कारणों का समुदाय प्राप्त होते भी (भवितव्यता के बिना) सुखादि कार्यों की उपलब्धि में असमर्थ है, यह बात आपने भली प्रकार कही है।

यह जीव मृत्यु से डरता है, किन्तु उससे पिंड नहीं छूटता। वह अविनाशी सुख को चाहता है, किन्तु भवितव्यता के प्रतिकूल होने पर उसका लाभ नहीं होता। ऐसी प्रतिकूल भवितव्यता होने पर यह अज्ञ प्राणी भय और कामना के अधीन हो वृथा स्वयं संताप प्राप्त करता है; यह बात आपने बताई।

प्रभो! आप संपूर्ण तत्वों के ज्ञाता हैं। अज्ञानी जनों को माता के समान कल्याण का उपदेश देते हैं। आप मोक्ष के कारण रूप गुणों का अन्वेषण करने वाले भव्य आत्माओं के पथ प्रदर्शक हैं। मैं भी अब आपका स्तवन मन वचन काय से भक्ति पूर्वक करता हूँ (यद्यपि गणधर देवादि ने आपका गुणगान किया है)—२१-२५

सुपार्श्वनाथ तथा पार्श्वनाथ भगवान के नाम साम्य तथा एक ही नगर में जन्म धारण करने के कारण कभी कभी पार्श्वनाथ भगवान और सुपार्श्वनाथ तीर्थंकर में अभिन्नता का भ्रम उत्पन्न होने लगता है। इस विषय में यह बात ज्ञातव्य है, कि सुपार्श्वनाथ भगवान की भिन्नता का ज्ञापक चिह्न स्वस्तिक है तथा पार्श्वनाथ प्रभु का चिह्न सर्पराज है।

'निर्वाणभक्ति' में पूज्यपाद स्वामी ने चिह्नों से विषय में जो श्लोक दिया
है वह महत्वपूर्ण है:—

गौ र्गजोश्वः कपिः कोकः सरोजः स्वस्तिकः शशी।
मकरः श्रीयुतो वृक्षो गंडो महिपसूकरौ॥
सेधा वज्र-मृग-च्छागाः पाठीनः कलशस्तथा।
कच्छपश्चोत्पलं शंखो नागराजश्च केशरी॥ ३४॥

यतिवृषभ आचार्य ने तिलोयपण्णत्ति में सुपार्श्वनाथ का चिह्न
स्वस्तिक के स्थान में नंद्यावर्त लिखा है। शीतलनाथ तीर्थंकर का
श्रीवृक्ष के स्थान में स्वस्तिक चिह्न बताया है। तिलोयपण्णत्तिका
कथन इस प्रकार है:—

"बैल, गज, अश्व, बन्दर, चकवा, कमल, नंद्यावर्त, अर्धचन्द्र,
मगर, स्वस्तिक, गेंडा, महिप, शूकर, सेही, वज्र, हरिण, बकरा,
तगरकुसुम, कलश, कछुवा, कमल, शंख सर्प तथा सिंह ये क्रमशः
ऋपभादि चौवीस तीर्थंकरों के चिह्न हैं।

आचार्य यतिवृषभ ने सुपार्श्वनाथ भगवान की इन मार्मिक
शब्दों में वंदना की है—संसार रूप महासागर के मंथनकर्ता, तीनों
लोकों के भव्यों को प्रेम एवं सुख के जनक तथा संपूर्ण पदार्थों के
दर्शक सुपार्श्वनाथ भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ।

भगवान विमलनाथ

इसके पश्चात विमलनाथ भगवान का 'संकुल-कूट' प्राप्त होता है।
उनने माघ सुदी चौथ के दिन उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में कंपिलापुरी के
अधिपति महाराज कृतवर्मा और माता जयश्यामा को अपने जन्म
द्वारा अवर्णनीय आनंद प्रदान किया था। वे सहस्रार स्वर्ग में इन्द्र
थे। वहाँ से चयकर वे कंपिलापुरी में उत्पन्न हुए थे। इनके पुण्य से
सर्वप्रजा सुखी थी।

चिरकाल तक सर्व प्रकार के सुखों का भोग करते हुए उनकी
दृष्टि एक दिन नभो मंडल के सुन्दर मेघों पर पड़ी। देखते देखते वे
मेघ विलीन हो गए। इस प्रकृति नटी के खेल को देख उन प्रभु के
मनमें अत्यन्त विशुद्ध तथा निर्मल भावों का उदय हुआ। उनने सोचा
जिस मेघ माला को मैं सतृष्ण नेत्रों से निहार रहा था, दूसरे क्षणमें
उसका पता नहीं है। इस संसार का सारा वैभव इसी प्रकार क्षण-
भंगुर हैं। इन बादलों ने मुझे दिव्य-दृष्टि प्रदान की। अब मैं इस

भंगुर जगत् से अपना सम्बन्ध तोड़कर अविनाशी सुखकी प्राप्ति के हेतु उद्योग करूँगा। उसका उपाय निर्ग्रन्थ वृत्ति है। अतः देव-विर्मित पालकी पर आरूढ़ हो वे माघ सुदी चौथ को अपराह्न काल में उत्तराभाद्रपद नक्षत्र के रहते सहेतुक वन में गए और दिगम्बर मुनि का पद अंगीकर किया। उनके साथ एक सहस्र नरेशों ने दीक्षा ली थी।

तीसरे दिन राजा जयकुमार के यहाँ नन्दपुर में खीरान्न द्वारा उनकी आहार विधि संपन्न हुई। इसके पश्चात वे पुनः वन को लौट आए। तीन वर्ष पर्यन्त उनने महान तप किया। पश्चात् वे सहेतुक वन में जम्बू वृक्ष के नीचे पहुँचे। वहाँ पौष सुदी दशमी को अपराह्न काल में उनने उत्तराषाढ़ नक्षत्र के रहते हुये केवलज्ञान प्राप्त किया। उत्तर पुराण में माघ सुदी षष्ठी को केवल ज्ञान बताया है। पूजा में लिखा है :—

विमल माघरसो हनि घातिया। बिमल वोध लयो सब भासिया।
विमल अर्घ चढ़ाय जजों अबें। विमल आनन्द देहुँ हमें सबैं॥

इनके समवसरण में ५५ गणधर थे। उनमें मंदर नामक मुनिराज प्रमुख थे। एक लाख तीन हजार आर्यिकायें थी। पद्मा नाम की प्रधान आर्यिका थीं। दो लाख श्रावक तथा चार लाख श्राविका थीं। समवसरण में ५५०० केवली, ११०० श्रुत केवली, ३६५०० उपाध्याय, ४८०० अवधि ज्ञानी, ५५०० विपुलमति मनःपर्यय ज्ञानवाले, ९००० विक्रियाऋद्धि वाले और ३६०० वादी मुनि, कुल मिलाकर ६८००० मुनिराज थे। यक्ष का नाम पाताल और यक्षी का गांधारी था।

अपने विहार द्वारा विमलनाथ प्रभु ने सर्वत्र अपने पवित्र शासन का प्रसार किया और मिथ्यात्व मल द्वारा अनादिकाल से कलंक युक्त आत्माओं को सम्यक्त्व की निधि प्रदानकर उनको सच्चे शान्तिपथ में लगाया।

जब आयु का एक माह शेष रह गया, तब वे शिखरजी पहुँचे और चार अघातिया कर्मो का नाश कर आषाढ़ सुदी अष्टमी को प्रदोष काल में छः सौ मुनियों के साथ सिद्ध परमात्मा बन गये। उत्तरपुराण में कहा है, कि वे आठ हजार छहसौ मुनियों के साथ आषाढ़ वदी अष्टमी को मोक्ष हो गए।

स्वामी समन्तभद्र रचित स्तोत्र में लिखा है "हे जिनेन्द्र ! जो नित्यपक्ष, क्षणिकपक्ष आदि को परस्पर संयोग न करते हुये ग्रहण करने वाले नय हैं, वे अपना और दूसरों का विनाश करने वाले हैं; वे ही आप विमल नाथ भगवान के कथनानुसार परस्पर में सापेक्ष होते हुए स्व तथा पर का कल्याण करते हैं।

जिनेन्द्र ! पारदरस से युक्त लोह धातु जिस प्रकार सुवर्ण-रूपता को धारण करती है, उसी प्रकार स्यात्पद इस सत्य-चिन्ह से युक्त आपके नय इष्ट प्रयोजन को सिद्ध करते हैं। इसलिए हिताकांक्षी गणधर आदि आर्य पुरुष आपके सामने प्रणत होते हैं (६१, ६५)

अजितनाथ भगवान

इसके अनन्तर अजितनाथ तीर्थंकर की 'सिद्धिवर' नाम की टोंक आती है। वे प्रभु विजय नाम के अनुत्तर विमान में अहमिंद्र थे। वहां ३३ सागर प्रमाण सुख भोगकर वे अयोध्या नगरी में महाराज जित शत्रु और माता विजयसेना के यहां माघ सुदी दशमी के दिन रोहणी नक्षत्र में उत्पन्न हुये। वृन्दावन जी लिखते हैं—

माघ सुदी दशमी दिन जाये, त्रिभुवन में अति हरष बढ़ाये।
इन्द्र फनिंद्र जजें तित आई, हम नित सेवत हैं हुलसाई ॥

एक दिन भगवान अपने महल की छत पर बैठे हुये थे, कि उनकी दृष्टि उल्कापात पर पड़ी। जिस प्रकार यह चमकदार दिखने वाला विद्युत का वैभव तत्काल ही अदृश्य हो गया, इसी प्रकार शरीर और जगत् के वैभव की भी स्थिति है। आश्चर्य है कि अज्ञ-प्राणी की भांति मैंने विषयों में अपना अब तक का समय नष्ट किया। उनकी वैराग्य धारा को प्रवर्धित करने के लिये लौकान्तिक देव आये और अजित नाथ प्रभु के मंगल भावों की अनुमोदना कर ब्रह्मलोक को लौट गये।

भगवान ने अजित सेन पुत्र को राज्य का भार सौंपा और वे सुप्रभा पालकी पर आरूढ़ होकर अयोध्या के सहेतुक वन में पहुँचे। परिग्रह का त्याग कर माघ सुदी नवमी के दिन अपराह्न काल में रोहणी नक्षत्र के रहते उनने सहेतुक वन में सप्तपर्ण वृक्ष के नीचे दीक्षा ली। उनके साथ एक हजार राजाओं ने भी मुनि पद धारण किया था।

उनका प्रथम आहार अयोध्यापुरी में ब्रह्मा नाम के महीपाल के यहां हुआ था। बारह वर्ष पर्यन्त तप के पश्चात् पौष शुक्ला एकादशी को अपराह्न समय में रोहणी नक्षत्र के रहते हुये सहेतुक वन में केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ। उनका अशोक वृक्ष सप्तपर्ण वृक्ष बना। इनके ९० गणधर थे। मुख्य सिंहसेन थे। आर्यिका ३२०,००० थी। उनमें मुख्य प्रकुब्जा थी। तीन लाख श्रावक और पांच लाख श्राविका थीं। इनकी यक्षी रोहणी थी। यक्ष का नाम महायक्ष था।

उनके समवसरण में २०,००० केवली, श्रुतकेवली ३७५०, विक्रियाऋद्धि के धारी २०४००, उपाध्याय २१६००, अवधिज्ञानी ९४००, मनः पर्यय ज्ञान वाले १२४५०, वादी मुनि १२४०० थे। इस प्रकार एक लाख मुनिराज थे।

धर्म की वर्षा द्वारा मोह सन्तप्त जीवों को शान्ति प्रदान करते हुये अजितनाथ प्रभु की आयु जब एक माह शेष रह गई, तब उनका समवसरण सम्मेदगिरि आ गया। वहां उनने चार अघातिया कर्मों का नाश करके चैत्र शुक्ला पंचमी के दिन प्रातः कालमें रोहणी नक्षत्र के रहते हुये एक हजार मुनियों के साथ मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त किया।

इनके समय में सगर नाम के दूसरे चक्रवर्ती हुये थे, जैसे आदिनाथ भगवान के समय में प्रथम चक्रवर्ती भरतेश्वर हुये थे।

स्वामी समन्तभद्र ने इनके स्तवन में लिखा है—"विजय नामक अनुत्तर विमान से अवतीर्ण जिन भगवान के प्रभाव से क्रीड़ा में भी हर्षित मुख-कमल युक्त तथा अजेय शक्ति वाले बन्धु समुदाय ने उन का 'अजित' यह सार्थक नाम रखा।

आज भी अजित-शासन वाले उन अजितनाथ भगवान का, जो भव्य पुरुषों को सन्मार्ग में प्रवृत्ति कराते हैं, उत्कृष्ट पवित्र नाम अपनी सिद्धि की कामना करने वाले लोगों के द्वारा मंगलरूप से ग्रहण किया जाता है।

जिस प्रकार मेघ के घेरे से रहित सूर्य कमलों को विकसित करता है, उसी प्रकार अपनी वाणी की महान शक्ति के द्वारा भव्य जीवों के अन्तःकरण में संलग्न कर्म कलंक की शांति के लिए जो महामुनि उत्पन्न हुए;

जिनने महान और श्रेष्ठ धर्मतीर्थ अर्थात् जिनवाणी का प्रणयन किया, जिनका आश्रय ले जीव दुःखों पर विजय प्राप्त करते हुए, संताप रहित होते हैं जिस प्रकार ग्रीष्म से पीड़ित गजराज चंदन के द्रव समान शीतल गंगा नदी को प्राप्त कर उष्णता के संताप से मुक्त होते हैं। उनके ये शब्द बड़े अपूर्व हैं:—

स ब्रह्मनिष्ठः समर्मित्रशत्रुः विद्या विनिर्वान्त कषायदोषः।
लब्धात्मलक्ष्मीरजितोऽजितात्मा जिनश्रियं मे भगवान् विधत्ताम् ॥१०॥

वे आत्मनिमग्न, मित्र और शत्रु में समभाव धारण करने वाले, विद्या के द्वारा कषाय दोष नष्ट करने वाले, आत्मलक्ष्मी अलंकृत, आत्मवान अजितनाथ भगवान मुझे जिनेंद्र की अनंतज्ञानादि लक्ष्मी प्रदान करें।

भगवान नमिनाथ

इसके पश्चात् भगवान् नमिनाथ के निर्वाण का 'मित्रधर' कूट आता है। ये अपराजित विमान में ३३ सागर की आयु वाले अहमिन्द्र थे। इन्होंने अषाढ़ सुदी दशमी के दिन अपने जन्म द्वारा महाराज श्रीविजय नरेन्द्र और महारानी वप्रिला के द्वारा शासित वंगदेश की मिथिलापुरी को अश्विनी नक्षत्र में कृतार्थ किया था। वृन्दावन पूजा में उत्तरपुराण के अनुसार आषाढ़ वदी दशमी को जन्म लिखा है—

जन्मोत्सव श्याम असाढ़ा। दशमी दिन आनंद बाढ़ा॥
हरि मन्दर पूजे जाई। हम पूजें मन वच काई॥

इनका जीवन अपूर्व आनन्द के साथ बीत रहा था। प्रजा भी सर्व प्रकार से सुखी थी। एक दिन की बात है, वे वर्षा काल में वन की शोभा देख रहे थे। दो देवता आकाश से उनके पास आये और उनने भगवान् के समीप अपने आने की यह वार्ता बताई, कि विदेह क्षेत्र में अपराजित केवली से ज्ञात हुआ था, भरतक्षेत्र को तीर्थंकर के रूप में आप अलंकृत कर रहे हैं, इसलिये आपके दर्शन द्वारा अपने नेत्रों को तृप्त करने हम यहाँ आये हैं। यह बात सुनते ही भगवान नमिनाथ के मन में संसार के परिभ्रमण सम्बन्धी विचार उत्पन्न हो गये। वे सोचने लगे यह जीव नाटक के नट की

तरह वेष बदलता हुआ अनेक पर्यायों में घूमा करता है। इस परि-भ्रमण से मुक्त होने का उपाय दिगम्बर मुद्रा धारण करना है।

उनने अपने सुप्रभ पुत्र को राज्य दिया। 'उत्तरकुरु' नामकी पालकी पर आरूढ़ हो वे चित्रा वन में अश्विनी नक्षत्र के रहते हुए आषाढ़ वदी दशमी को पहुँचे तथा एक सहस्र राजाओं के साथ उनने मुनि दीक्षा अंगीकार की। तीसरे दिन उनका आहार वीरपुर में दत्त नरेन्द्र के यहाँ विधि पूर्वक हुआ। इनने उत्तरपुराण के अनुसार ९ वर्ष पर्यन्त छद्मस्थ अवस्था में व्यतीत किये; किन्तु तिलोय पण्णति में यह काल ९ मास लिखा है—"णमि णाहे णव मासा"

—(४-६७७)

इनको बकुल वृक्ष के नीचे मार्ग शीर्ष शुक्ला पूर्णिमा को चित्र वन में दिन के पश्चिम भाग में अश्विनो नक्षत्र के रहते हुए केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। समवसरण में १७ गणधर थे। उनमें प्रमुख सुप्रभ थे। ४५,००० आर्यिकायें थीं, जिनमें मुख्य आर्यिका का नाम मंगिनी था। एक लाख श्रावक और तीन लाख श्राविका थीं। यक्ष का नाम गोमेध और यक्षी का बहुरूपिणी था। इनके समवसरण में २०,००० मुनि थे। १६०० केवली, श्रुतकेवली ४५०, उपाध्याय १२,६०० अवधिज्ञानी १६००, विक्रिया ऋद्धि वाले १५००, मनःपर्यय ज्ञान के धारक १२५० तथा एक हजार वादी थे।

धर्म के अमृत का जगत को पान कराते हुये ये जिनेन्द्र एक माह आयु शेष रहने पर सम्मेद शिखर पधारे और वैशाख वदी चतुर्दशी के दिन प्रभात काल में एक हजार मुनियों के साथ अश्विनी नक्षत्र के रहते हुए मोक्ष को पधारे। देवताओं ने निर्वाणोत्सव मनाया। इनकी पूजा में लिखा है—

वयशाख चतुर्दशि श्यामा। हनि शेष वरी शिव वामा॥
सम्मेद थकी भगवन्ता। हम पूजैं सुगुन अनन्ता॥

स्वामी समन्तभद्र ने नमिनाथ भगवान् के स्तवन में बड़े मार्मिक विचार व्यक्त किए हैं।

"भगवन्! स्तुति करने वाले भव्य जीव के पवित्र परिणामों में स्तुति कारण रूप है, भले ही स्तुत्य (जिनकी स्तुति की जाती है)

वहाँ विद्यमान हों अथवा अविद्यमान हों; किन्तु पवित्र परिणामों के द्वारा वह जीव कल्याणकारी सामग्री को प्राप्त करता है। इस प्रकार कल्याण का मार्ग अपने आधीन होने के कारण सुलभ होने से निरंतर पूजनीय नमिनाथ भगवान् का कौन विद्वान् स्तवन न करेगा ?

हे महाज्ञानी ! आपने ब्रह्म स्वरूप में एकाग्रतायुक्त मन लगाकर जन्म बन्धन के मूल रूप कर्म का ही उच्छेद कर दिया है। आप विद्वानों के लिए मोक्ष मार्ग रूप हैं। प्रभो ! आपकी ज्ञान-ज्योति की वैभव युक्त किरणों के प्रकाशित होने पर अन्य एकांत दृष्टि वाले आषाढ़ मास के सूर्य के समक्ष जुगनू सदृश हो जाते हैं।

जिनेन्द्र ! आपने बताया कि प्राणियों की अहिंसा जगत् में उत्कृष्ट ब्रह्म स्वरूप है। जिस आश्रम विधि में अल्प प्रमाण में भी आरम्भ है, वहाँ वह अहिंसा नहीं है। अतएव उस अहिंसा की पूर्ण सिद्धि के लिए परम करुणाशील आपने बाह्य और अंतरंग परिग्रह का त्याग किया और आप विकृत वेष और परिग्रह में आसक्त नहीं हुए।

हे देव ! आभूषणादि विरहित आपका शरीर उपशांत इन्द्रियों सहित होने से कामवाण रूप विष की व्यथा के विजय को सूचित करता है। भयंकर शस्त्रों के बिना आपने क्रूर हृदय क्रोध का क्षय किया है, अतः आप मोह-विजेता और शांति के निकेतन हैं, इसलिए आप हमारे लिए आश्रय रूप हैं।

—(११६, ११७, ११८, १२०)

भगवान् नेमिनाथ

इसके पश्चात् बाईसवें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ की टोंक आती है। इनका चरित्र करुणारस से परिपूर्ण है। वेदों में भी इनको पूज्य माना है। ऋग्वेद एक मंत्र है "स्वस्ति नः तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः।" इनका शौरीपुर में महाराज समुद्रविजय के यहाँ माता शिवादेवी के उदर से जन्म हुआ था। श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन चित्रा नक्षत्र में इनका जन्म हुआ था। ये सद्धर्म रूपी चक्र की धुरा (नेमि) होने से नेमिनाथ कहलाए। (नेमिं सद्धर्मचक्रस्य नेमिनामानमभ्यधात्—उत्तर-पुराण)। महाराज श्रीकृष्ण इनके चचेरे भाई थे। इनके विवाह के समय मांसभक्षी बराती राजाओं के लिए एकत्रित पशुओं के करुणक्रंदन को सुनकर तथा समस्त रहस्य ज्ञातकर इनका हृदय राग के स्थान

में वैराग्य भाव से पूर्ण हो गया। इनने विवाह का विचार ही त्याग दिया। ये पंच बालयति तीर्थंकरों में तीसरे हैं। इनने श्रावण शुक्ला षष्ठी को 'देवकुरु' पालकी में बैठकर द्वारिका के बाहर सहस्राम्रवन में संध्या के समय एक हजार राजाओं के साथ मुनिदीक्षा धारण की। भगवान का प्रथम आहार राजा वरदत्त के यहां हुआ था। छप्पन दिन पर्यन्त छद्मस्थ काल के अनंतर उनने आश्विन मास की प्रतिपदा के प्रभात में केवल ज्ञान प्राप्त किया।

उनके समवशरण में वरदत्त आदि ११ गणधर थे। चार सौ श्रुतकेवली, ग्यारह हजार आठसौ उपाध्याय, पंद्रहसौ अवधिज्ञानी, पंद्रहसौ केवली, ग्यारहसौ विक्रिया ऋद्धिधारी, नौसौ मनःपर्ययज्ञानी, आठसौ वादी, सब मिलाकर अठारह हजार मुनि थे। राजमती आदि चालीस हजार आर्यिका थीं। एक लाख श्रावक, तीन लाख श्राविका, असंख्य देव तथा संख्यात तिर्यंच उनके समवशरण में थे। उनने आषाढ़ सुदी सप्तमी के दिन चित्रा नक्षत्र में रात्रि के प्रारंभ में पांचसौ तेंतीस मुनियों के साथ एक माह पर्यन्त योग निरोध के पश्चात् उर्जयन्त गिरि से मोक्ष प्राप्त किया। आज यह गिरनार पर्वत उनके पुण्य जीवन का सजीव स्मारक विद्यमान है। यह टोंक उन्हीं बाल यतिपति का स्मरण कराती है।

गुणभद्राचार्य कहते हैं:—

शान्त्यादि-दशारा-धर्मालंबनं यमुदाहरन्।
संतः सद्धर्मचक्रस्य स नेमिः शंकरोस्तु नः॥

संत जन जिनको उत्तम क्षमा आदि दश धर्म रूपी आरों का आलंबन बताते हैं तथा जो सद्धर्म की धुरा रूप है, वे नेमिनाथ भगवान हमारा कल्याण करें।

एक भक्त पूजक कहता हैं:—

बालब्रह्मचारी जगतारी नेमीश्वर जिनराज महान।
मैं नित ध्यान धरूं प्रभु तेरा मोकूं दीजो अविचल थान॥

भगवान पार्श्वनाथ

इसके अनंतर भगवान् पार्श्वनाथ की निर्वाण भूमि सुवर्णभद्रकूट आती है। उनके पिता महाराज विश्वसेन काशी पति थे। माता का

नाम उत्तरपुराण में ब्राह्मी देवी आया है। उनकी वामा देवी के रूप में भी प्रसिद्धि है। भगवान् का जन्म पौष कृष्णा एकादशी को हुआ था। प्रभु का आगमन आनत स्वर्ग से हुआ था। विमान का नाम प्रानत था (विमाने प्राणतेऽभवत-उत्तर पुराण)। इनकी मनोवृत्ति प्रारम्भ से ही वैराग्यभाव प्रधान थी। इससे श्रेष्ठ सामग्री उपलब्ध होते हुए भी इनका विरक्तमन इंद्रियजय की ओर उन्मुख रहता था। इनने बाल्यकाल में ही ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया था।

पूर्वजन्म के उज्वल संस्कारों के प्रभाव से इनका चित्त मुनि बनने की ओर आकर्षित हो गया। वे विमला नामक पालकी पर बैठ विमल भावना युक्त हो अश्ववन में पहुँचे। वहां पौष कृष्णा एकादशी के प्रभात में तीन सौ राजाओं के साथ उनने दिगम्बर दीक्षा धारण की।

गुल्मखेटपुर के राजा धन्य ने प्रभु को प्रथम बार आहार दिया था। इसके पश्चात् भगवान ने छद्मस्थ अवस्था के चार माह व्यतीत किए। फिर जिस वन में उनने दीक्षा ली थी, वहां ही आकर देवदारू नामके वृक्ष के नीचे विराज मान हुए। आठ दिन का उनने उपवास धारण किया। उनकी विशुद्धता बढ़ रही थी, उस समय कमठ का जीव संवर नाम का ज्योतिषीदेव अपने विमान में बैठकर वहां से निकला। भगवान् के ऊपर से जाने के कारण- उसका विमान रुक गया। इससे उसे क्रोध आया। पूर्वभव के विद्वेष को स्मरणकर उस दुष्ट ने सात दिवस पर्यन्त भयंकर वर्षा, वज्रपात तथा, प्रचण्ड आंधी चलाकर उपद्रव किए। उसने यमराज के समान पत्थर की वर्षा आदि द्वारा घोर उपसर्ग किए। उत्तरपुराण में कहा है :—

व्यधात्तथैव सप्ताहान् अन्यांश्च विविधान् विधीः।
महोपसर्गान् शैलोपनिपातांतानिवांतकः॥ ७३ पर्व,१३८॥

अवधि ज्ञान से उपसर्ग का हाल जानकर धरणेन्द्र-पद्मावती ने वहाँ आकर उपसर्ग निवारण किया। गुणभद्र स्वामी लिखते हैं; "पद्मावती के साथ वहाँ धरणेन्द्र आया और देदीप्यमान रत्नों के फणामंडप से सुशोभित होकर उसने चारों ओर से प्रभु को ढककर उनको ऊपर उठा लिया। पद्मावती अपने फणाओं के समूह का वज्र मयी छत्र बनाकर बहुत ऊंचा उठाकर ऊपर खड़ी रही। इस प्रकार

स्वभाव से ही क्रूर ऐसे सर्प और सर्पिणी ने केवल किये गए उपकार को स्मरणकर वह उपसर्ग दूर किया।" उपसर्ग दूर होते ही भगवान् ने क्षपक श्रेणी का आरोहण कर चैत्रकृष्णा चतुर्दशी के दिन विशाखा नक्षत्र में सवेरे केवलज्ञान प्राप्त किया। उस समय काललब्धि के प्राप्त होने से वह संवर देव वहां आकर शांत भाव युक्त हो गया। उसने सम्यक्त्व की विशुद्धता प्राप्त की। (प्रापत् सम्यक्त्व संशुद्धिम्)।

भगवान् के समवशरण में स्वयंभुव को आदि लेकर दस गणधर थे। तीन सौ पचास द्वादशांग वेत्ता थे। दस हजार नौ सौ उपाध्याय, चौदस सौ अवधिज्ञानी, एक हजार केवलज्ञानी, एक हजार विक्रिया ऋद्धिधारी, सात सौ मनःपर्ययज्ञानी यह सौ वादी थे। सब मुनि सोलह सहस्र थे। सुलोचना आदि छत्तीस हजार अर्जिका, एक लाख श्रावक तथा तीन लाख श्राविकाएँ समवशरण में थीं। भगवान् के यक्ष तथा यक्षी का नाम धरणेन्द्र तथा पद्मावती था। तिलोयपण्णत्ति में यक्ष का नाम मातंग दिया गया है। समवशरण में असंख्यात देवी देवता तथा संख्यात तिर्यंच थे।

भगवान् की दिव्य देशना द्वारा जीवों महान् आनन्द हुआ। कहा भी है

> बानी सुन बारह सभा भयो सबन आनन्द।
> जैसे सूरज के उदय विकसै वारिज वृन्द॥

कमठ पर उपदेश का जो प्रभाव पड़ा उसका चित्रण भूधरदास जी के पारसपुराण में इस प्रकार किया गया है :—

> कमठ जीव सुर जोतिषी करि वचनामृत पान।
> वमों वैर मिथ्यात्व विष नमों चरण जुग आन॥
> सम्यग्दर्शन आदरयो मुक्ति तरुवर मूल।
> शंकादिक मल परिहरे गई जनम की शूल॥
> तहां सात सौ तापसी करत कष्ट अज्ञान।
> देखि जिनेश्वर संपदा जग्यो जथारथ ज्ञान॥ (अध्याय ८)

इस प्रकार उनने पाँच माह कम सत्तरि वर्ष तक बिहार किया। एक माह पर्यन्त योग विरोध कर वे पारस प्रभु श्रावण शुक्ला सप्तमी को ३६ मुनियों सहित प्रदोष काल में सम्मेद शिखर से कार्योत्सर्ग

आसन द्वारा मोक्ष को पधारे। भगवान् के निर्वाण का पारस पुराण में इस प्रकार सुन्दर चित्रण किया गया है।

इह विधि वारह सभा समेत, रतनत्रय मारग विधि देत।
विरह मान दरसावत बाट, सत्तर बरष भये कछु घाट॥
सम्मेदा चल शिखर जिनेश, आयो श्री पारस परमेश।
एक मास जिन योग निरोध, मन वच काय क्रिया सवरोध॥
सूक्ष्म काय योग थिति ठान, त्रितिय शुकल संजुत तिहिं ठान।
तजि सयोग थानक स्वयमेव, आये फिर अयोग पद देव॥
पँच लघु क्षर है तिथि जहां, चतुरथ शुक्ल ध्यान वल तहां।
इहविध कर्म जीत भगवान, एक समय पहुँचे निर्वान॥
इहविध कर्म जीत भगवान, लोक शिखर निवसे जिन नाथ।
औ छत्तीस मुनीश्वर साथ, भये हीन आतम परमेश॥
पूरव चरम देह तैं लेश, निहचै गुण अनन्त भंडार।
अष्ट गुनातम मय व्यवहार,

भगवान् के निर्वाण के विषय में ये पद्य अत्यन्त उपयोगी हैं।

बसैं सिद्ध शिव खेत में, ज्यों दर्पन में छाहिं।
ज्ञान नयन सो प्रगट हैं, चर्म नैन सो नाहिं॥
तब इन्द्रादिक सुर समुदाय, मोक्ष गये जाने जिनराय।
श्री निर्वाण कल्याणक काज, आये निज निज वाहन साज॥
परम पवित्त जानि जिन देह, मणि शिवका पर थापी तेह।
करी महापूजा तिहिं वार, लिये अगर चंदन घन सार॥
और सुगंध दरव शुचि लाय, नमें सुरासुर शीस नमाय।
अग्निकुमार इन्द्र तैं ताम, मुकटानल प्रगटी अभिराम॥
ततखिन भस्म भई जिन काय, परम सुगन्धित दशों दिशिपाय।
सो तन भस्म सुरा सुर लई, कंठ हिये कर मस्तक ठई॥
भक्ति भरे सुर चतुरन काय, इह विध महा पुण्य उपजाय।
कर आनन्द निरत निरत वहु भेष, निज निज थान गये सब देव॥

आचार्य समन्तभद्र प्रभु पार्श्वनाथ भगवान के स्तवन में लिखते हैं—" दुष्ट कमठ कृत विद्युत रूपी डोरी संयुक्त इन्द्रधनुष सहित वज्र, वायु और जल की वर्षा करने वाले तमाल वृक्ष समान श्याम मेघों से पीड़ित जो महामना जिनेन्द्र आत्म ध्यान से विचलित नहीं हुये;

विविध वर्ण युक्त सन्ध्या समय के विद्युत्-विभूषित वारिद (मेघ) जिस प्रकार पर्वत को आच्छादित करते हैं, उसी प्रकार देदीप्यमान बिजली सदृश पीत वर्ण वाले विशाल फणा-मंडल रूप मंडप से धरणेन्द्र ने उपसर्ग प्राप्त जिन प्रभु को वेष्टित किया;

जिनने आत्मयोग (उत्कृष्ट शुक्ल ध्यान) रूप खड्ग की तीक्ष्ण धारा के द्वारा दुर्जय मोह-शत्रु का संहार कर अचिन्त्य, अद्भुत और लोकत्रय द्वारा महान पूजनीय गौरव युक्त अरहन्त पद को प्राप्त किया;

जिन कलंक मुक्त पार्श्वनाथ प्रभु को देखकर वनवासी तथा अपने परिश्रम में व्यर्थ बुद्धि लगाने वाले अन्य तपस्वी भगवान के समान अरहंत पद प्राप्त करने की कामनायुक्त हो शान्तिपूर्ण उपदेश दाता भगवान के शरण में आये;

जो सत्य विद्या और तपस्या के प्रणेता हैं, सर्वज्ञ हैं, उग्रवंश रूपी आकाश के लिए चन्द्रमा है तथा मिथ्या मार्ग द्वारा उत्पन्न दृष्टि के भ्रम को दूर करने वाले हैं, उन पार्श्वनाथ जिनेन्द्र को मैं सर्वदा प्रणाम करता हूं।

गुणभद्राचार्य कहते हैं—

स पातु पार्श्वनाथोऽस्मान् यन्महिम्नैव भूधरः ।
न्यषेधि केवलं भक्तिर्भोगिनी छत्रधारणम् ॥

जिनकी केवल महिमा से ही धरणेन्द्र तथा पद्मावती ने भक्ति-पूर्वक छत्र धारण कर जिनका उपसर्ग दूर किया है, वे पार्श्व प्रभु हमारी रक्षा करें।

महाकवि का प्रभु के विषय में यह कथन यथार्थ है—

आदि-मध्यांत गंभीराः संतोम्भोनिधिः सन्निभाः ।
उदाहरणमेतेषां पार्श्वो गण्यः क्षमावताम् ॥

जो सज्जन हैं, आदि, मध्य तथा अन्त में समुद्र के समान गंभीर हैं, ऐसे क्षमावानों में यदि कोई उदाहरण ढूँढ़ा जाय, तो उनमें भगवान् पार्श्वनाथ की ही गणना की जायगी।

धन्य है यह जैन धर्म जिसके प्रसाद से गज की पर्याय वाले जीवनें उन्नति करते हुए इस सुवर्णभद्रकूट से जग राज की पूज्यता को प्राप्त कर मोक्ष का अधिपतित्व प्राप्त किया। पाषाण में पारस का नाम लगकर जब वह पारस पाषाण कहलाता है, तब वह लोह सदृश हीन धातु को स्पर्श द्वारा स्वर्णरूपता प्रदान करता है, अतः यदि पारसनाथ भगवान् के निर्वाण स्थल होने से उस टोंक का नाम स्वर्णभद्र बन गया, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

पार्श्वप्रभु की जन्मभूमि बनारस के कारण बनारसीदास नाम प्राप्त करने वाले महाकवि की स्तुति का यह पद्य कितना मार्मिक तथा सरसता परिपूर्ण है :—

जिन्ह के वचन उर धारत जुगल नाग भए धरणेन्द्र पद्मावती पलक में।
जाकी नाम महिमा सों कुधातु कनक करे पारस पाखान नामी भयो है खलक में॥
जिनकी जनमपुरी के परसाद हम आपनो सरूप लखो भानु सो भलक में।
सोई प्रभु पारस महारस के दाता अब दीजे मोहि साता दृगलीला की ललक में॥

सम्मेद शिखर की वंदना करने वाले विवेकी भक्त को तीर्थंकरों के सिवाय अन्य असंख्य मुनीन्द्रों को भी प्रणाम करना चाहिए, जिनने उस प्रदेश पर आकर सिद्ध पदवी प्राप्त की है।

॥ ॐ ह्रीं श्री अनंतानंत-परमसिद्धेभ्यो नमो नमः ॥